शैलाश्रित गुहाचित्र

डॉक्टर अर्जुनदास केसरी

लोकरुचि प्रकाशन, राबर्ट्सगंज, मिर्जापुर (उ० प्र०)

श्री आदित्यनाथजी मिश्र (संयुक्तनिदे॰)
(गो॰ का॰ वि॰) के लिए---
[illegible]
३०/३/९५

शैलाश्रित गुहाचित्र

डॉ० अर्जुनदास केसरी

आवरण : ब्रह्मदेव मधुर

छायाङ्कन : { एस० अतिबल
देवकुमार मिश्र

रेखाङ्कन : नंदिता शर्मा

लोकरुचि प्रकाशन, राबर्ट्सगंज, 231216—मिरजापुर (उ० प्र०)

शैलाश्रित गुहाचित्र

प्रस्तुत पुस्तक भारत सरकार की 'प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी में लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशन की योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित की गई है। इस प्रथम संस्करण की 3000 प्रतियों में से भारत सरकार ने 1000 प्रतियाँ खरीदी है। इसके लेखक डॉ० अर्जुनदास केसरी हैं।

अर्जुनदास केसरी

प्रथम संस्करण 1984

प्रतियाँ 3000

मूल्य : चौदह रुपये मात्र

मुद्रक :

सूर्यलाल वाजपेयी

सेवाश्रम प्रिंटिंग प्रेस

जे० 1/63 शेषमन बाजार, वाराणसी

SHALASHRIT GUHACHITRA

by Dr. Arjundas Kesari

LOKRUCHI PRAKASHAN

Robertsganj, Mirzapur (INDIA)

Price Rs. 14/

प्रस्तावना

हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान का विविध साहित्य उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय पुस्तक प्रकाशन की अनेक योजनाओं पर कार्य कर रहा है। इनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से हिन्दी में लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशन की है। सन् 1961 से कार्यान्वित की जा रही इस योजना का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार करना और साथ ही हिन्दोतर भाषाओं के भी साहित्य की लोकप्रिय पुस्तकों को हिन्दी में सुलभ कराना है ताकि ज्ञान विज्ञान की जानकारी पाठकों को सुबोध शैली में मिल सके। इसके अन्तर्गत प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों को अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचाने के विचार से इनका मूल्य कम रखा जाता है। इस योजना के अधीन प्रकाशित पुस्तकों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है ताकि हिन्दी के विकास में ऐसी पुस्तकें उपयोगी सिद्ध हों। इन पुस्तकों में विचार लेखक के अपने होते हैं।

पुस्तक 'शैलाश्रित गुहाचित्र' के लेखक डॉ० अर्जुनदास केसरी हैं। इस पुस्तक में मिरजापुर के प्रागैतिहासिक काल के गुहाचित्रों का संपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और अन्य देशों के गुहाचित्रों से तुलना करने का भी प्रयास किया गया है। लेखक ने परिश्रम और लगन के साथ पुस्तक में तत्कालीन संस्कृति, समाज, कला-परिवेश, जीवनदर्शन आदि का विस्तृत विवरण रोचक शैली में प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक है।

आशा है सामान्य पाठकों के साथ-साथ विद्वज्जन भी इस पुस्तक का स्वागत करेंगे।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
(शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय)
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066
16 जून, 1984

राजमणि तिवारी
निदेशक

पुरोवाक्

नदी, पहाड़, वन संस्कृति के आदि स्रोत रहे हैं। इनसे सम्बन्धित न जाने कितनी किंवदन्तियाँ, घटनाएँ और लोकवार्ताएँ अनायास जुड़ी हैं। आदि मानव की संस्कृति और कलात्मक अभिव्यक्तियाँ अद्यावधि, विशेष रूप से कैमूर की घाटियों में सर्वत्र विमूर्च्छित पड़ी हैं। काल के असंख्य आघातों को सहता हुआ आदिम पूर्वजों का यह रचना-लोक नदियों की वादियों में अवस्थित प्रस्तर गुहाओं तथा कन्दराओं में अपनी अंतिम साँसें गिन रहा है। आज जबकि हम भौतिक प्रगति की मंजिलें द्रुतगति से पार करते जा रहे हैं, अतीत युगीन मानवीय सभ्यता के ये अवशेष थाती के रूप में आदिम अस्तित्व की पहचान के कुछ बहुमूल्य सूत्रों के उद्धार के लिये हमें सजग तथा सचेष्ट करते हैं।

ये सूत्र हमें बताते हैं कि पुरातन भारत का स्वरूप कुछ और ही था। सभी ओर से वह अखण्ड तथा अविभाज्य था और उसकी एक धारावाहिक संस्कृति थी। हमारा आदिम इतिहास भौगोलिक सीमाओं में बँधा न रहकर अविच्छिन्न था। आज के विकसनशील वैज्ञानिक युग की वांछाओं तथा आवश्यकताओं ने आज उसे विच्छिन्न कर दिया है।

सांस्कृतिक और राजनीतिक भारत के इतिहास में उत्तर प्रदेश की स्थिति सदा से बड़ी ही विलक्षण एवं महत्वपूर्ण रही है। यही आर्यों का मध्य देश था। अतीत काल से वायव्य कोण से संचरित युयुत्सु जातियों के प्रवेश द्वार से भारत के हृदयस्थल को मिलाने वाले पथ से जुड़े होने के कारण तथा पंचनद और बंगभूमि के बीच उपजाऊ मैदान का मध्यवर्ती भूभाग होने के कारण उसका इतिहास उत्तर भारत के सम्पूर्ण इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। यद्यपि उसके प्रागैतिहासिक अथवा मिथकीय अतीत के सम्बन्ध में हम अल्पज्ञान हैं, तथापि अन्वेषण, सर्वेक्षण एवं उत्खनन के फलस्वरूप प्राप्त प्राचीन एवं नव पाषाण कालीन पुरावशेष हमारे मन में इस प्रदेश की आदिम अथवा पुराकालीन स्मृतियों को ताजा कर देते हैं।

आदिम काल की स्मृतियों से जोड़ने वाली प्रागैतिहासिक कालीन चित्रित गुफाओं का अध्ययन सम्पूर्ण मानव समाज के लिए उपयोगी एवं प्रेरक हैं। श्री वी० एस० वाकणकर के अनुसार गुफाओं में चित्रित एक-एक चित्र हजार-हजार शब्दों की अभिव्यक्ति देते हैं; जबकि इन गुफाओं में अगणित चित्र तत्युगीन मानव द्वारा सृजित हैं।

कैमूर के सुविस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत मिरजापुर की प्रागैतिहासिक संस्कृति पर जितना कुछ प्रकाश अब तक डाला गया है, उसे यद्यपि अपर्याप्त तो नहीं कहा जा सकता तो भी शेष भारत की पुराचीन स्मृतियों के सन्दर्भ में उसके आकलन का कार्य अब भी

अधिकारी विद्वानों के लेखन-चित्रण की प्रतीक्षा में पड़ा है। वास्तव में मिरजापुर को सही ढंग से परखने की शुरुआत अब हुई है। मिरजापुर जनपद साहित्य संस्कृति, धर्म, कला के साथ उद्योग तथा वाणिज्य आदि सभी दृष्टियों से इतना समृद्ध है कि इन सभी विषयों पर ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। 'लोरिकायन' 'करमा' के संकलन एवं उन पर शोधकार्य सम्पन्न कर लेने के उपरान्त अत्यन्त उपयोगी तथा सांस्कृतिक अतीत के अनुसंधान के लिये जब उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा इन पंक्तियों के लेखक को 'महापण्डित राहुल सांकृत्यायन नामित पुरस्कार' से सम्मानित किया गया तो इस दिशा में कुछ और कार्य करने का उत्साह जमा। 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के उत्थान में मिरजापुर जनपद का योगदान' विषय पर पुस्तक प्रणयन का कार्य हाथ में ले चुका था जिसे समय निकाल कर पूरा किया। इसी क्रम में मिरजापुर के गुहाचित्रों के देखने परखने का सुअवसर मिला था और तभी इस विषय पर अलग से कार्य करने का मन बना लिया था। आदिवासी क्षेत्रों में निरंतर कार्य-रत रहने के फल स्वरूप विभिन्न स्थलों तथा वहाँ के जनजीवन से भी परिचय हो गया था, अतः अवसर मिलते ही सर्व प्रथम गुहाचित्रों के संकलन में संलग्न हो गया और एक वर्ष के बीच मिरजापुर की जानी-अनजानी प्रायः सभी गुफाओं की यात्रा की और तत्सम्बन्धी अनेकानेक किवदन्तियों और लोक प्रसिद्धियों को संकलित करता रहा। इसी बीच मध्य प्रदेश और बिहार की चित्रित गुफाओं को भी देखने का अवसर मिला और उनपर लिखी पुस्तकों का अवलोकन भी किया। इस क्रम में मुझे यह अनुभव होता रहा कि इस विषय को लेकर मिरजापुर पर अब तक कोई ठोस, प्रामाणिक और सम्पूर्ण कार्य हुआ ही नहीं है। अतः अपने संकल्प, साधन और शक्ति के अनुरूप जब इस महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह हेतु तत्पर हुआ तो लगभग पाँच वर्ष का समय मिरजापुर की प्रागैतिहासिक संस्कृति तथा आदिम कला के सकलन-अध्ययन एवं लेखन में लग गया। इस कार्य में पदे-पदे अड़चनें गाड़ी के सामने काठ बनकर आती गयीं और तमाम जोखिम भी उठाने पड़े। फिर भी जैसे तैसे यह कार्य पूरा हो गया।

इस पुस्तक में मिरजापुर की प्रागैतिहासिक संस्कृति से सम्बन्वित सामग्री का अध्ययन किया गया है। इस सन्दर्भ में भारत तथा भारत के बाहर प्राप्त शैलाश्रित गुहाचित्रों का भी आवश्यकतानुसार उल्लेख किया गया है ताकि गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जा सके। प्रागैतिहासिक काल के अधिकतर चित्र दुर्गम पहाड़ियों में बने हैं जो प्रायः लाल या सूखे रक्त-वर्ण के हैं। उनमें से कुछ चित्र काले, कुछ पीले, कुछ हरे और भूरे रंग के हैं। लाल, पीला और नारंगी रंग हेमेटाइट और आइरन आक्साइड के योग से बनता था। काले रंग का विशेष पेंट कोलीन या लाइमस्टोन से बनाये जाते थे। मैंगनीशियन आक्साइड का घोल तैयार किया जाता था। इसी प्रकार हरा रंग तांबा के योग से बनता था। इस क्षेत्र में

लाल, पीले, हरे, नीले, काले तथा भूरे रंग के पत्थर बहुलता से पाये जाते हैं। गुहा मानव अपने आसपास अनायास उपलब्ध गेरू, बालू, पत्थर, मिट्टी, चूना आदि खनिजों को पीस कर चर्बी मिश्रित पेस्ट आग पर रखकर तैयार करता था और जानवरों के बाल या बाँस अथवा उंगली ही की तूलिका से अपने आवास कलामय कर देता था। वे चित्र इतने दिनों तक इसलिए अमिट रह गये क्योंकि वहाँ तक हवा, पानी, धूप की पहुँच कम हो पाती थी।

सर्वाधिक गुहाचित्र सोन की घाटी में मिले हैं। अतः राबर्ट्सगंज को केन्द्र मानकर उन तक पहुँचने हेतु वांछित सामग्री के संकलन-अध्ययन करने का यत्न किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए मिरजापुर की सभी चित्रित गुफाओं तथा शैलाश्रयों को विभिन्न सम्भागों में बाँटा गया है। प्रथम संभाग राबर्ट्सगंज से थोड़ी दूर पर स्थित 'पंचमुखी' है, दूसरे संभाग में उसके पास 'चनाइनमान' के चित्र, फिर क्रमशः 'कण्डाकोट', 'लिखनियाँ', 'मुखादरी' के चित्रों का अध्ययन किया गया है। मुखादरी के बाद विपरीत दिशा में पूरब की ओर सोनघाटी संभाग के क्रमशः 'सीताकुण्ड' 'विजयगढ़', 'केरवा घाट', 'घोड़मागर', 'हिरनाहिरनी' आदि स्थानों के चित्रों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इन सभी स्थानों की यात्रा जीप, ट्रक, ट्रैक्टर, मोटर साइकिल द्वारा की जा सकती है। इन स्थलों के अतिरिक्त लेखनियाँ संभाग (अहरौरा) और फिर चुनार, मिरजापुर, राजगढ़, विंढमफाल सहित अन्य प्रायः सभी ज्ञात चित्रित शैलाश्रयों का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। इसी क्रम में उन सभी स्थानों के ऐतिहासिक महत्व, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा विश्रुत प्रवादों तथा किंवदन्तियों का भी यथावसर उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त शैलाश्रयों का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। लेखक को कई कई बार इनका निरक्षण तथा अध्ययन करना पड़ा क्योंकि किसी चित्र पर अनुमानों तथा संदर्भों के पृथक-पृथक सूत्रों तथा सुझाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न और अनिश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते थे। अतः इन पर छिटफुट लेख लिख कर विद्वानों और पाठकों की प्रतिक्रियाएँ भी आमंत्रित की गयीं। पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि प्रसार के माध्यमों द्वारा चर्चित हो जाने तथा अधिकारी विद्वानों से परामर्श के पश्चात् ही लेखनी उठाने का साहस समेट सका।

पहले अध्याय 'गुहाचित्र: उनका संकलन, अध्ययन तथा महत्व' में गुहाचित्रों का महत्व उनका संकलन कार्य, विधि उसके विषय एवं प्रतिपाद्य पर प्रकाश डाला गया है। उस दिशा में हुए कार्य की समीक्षा करते हुए प्रस्तुत कार्य के उद्देश्य तथा उसमें पड़ने वाली अड़चनों की ओर भी यथावसर संकेत किया गया है।

दूसरा अध्याय 'भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला के सन्दर्भ में मिरजापुर' है जिसके अन्तर्गत मिरजापुर की स्थिति, जलवायु, मिट्टी, कृषि, यातायात, क्षेत्रफल, जनपद के ऐतिहासिक-सांस्कृतिक और पौराणिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए कला की दृष्टि से प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्रों के महत्व पर प्रकाश डाला गया है ताकि कला के अध्ययन का सैद्धान्तिक पक्ष भी सुस्पष्ट हो सके।

तीसरा अध्याय है 'मिरजापुर के गुहाचित्र विश्लेषणात्मक अध्ययन' जिसके अन्तर्गत मिरजापुर की प्राप्त चित्रित गुफाओं एवं शैलाश्रयों का विश्लेषणात्मक और परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

चौथे अध्याय मिरजापुर के गुहाचित्रों का वर्गीकृत अध्ययन' में कालक्रम से सभी चित्रों-शैलाश्रयों का वर्गीकरण किया गया है और प्रयास किया गया है कि उनमें प्राप्त सभी प्रकार के चित्र आ जायँ। जीवाकृतियों को पहले रखा गया है, क्योंकि मनुष्य के पूर्व भी इनकी स्थिति स्वाभाविक रूप से थी। इसके उपरान्त मानवाकृतियों तथा आखेट के दृश्यांकनों को, फिर युद्ध, आमोद-प्रमोद, कृषि-उद्योग को प्रदर्शित करने वाले चित्रों को सम्मिलित किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय 'गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन' है। इसके अन्तर्गत मिरजापुर के सन्दर्भ में देश-विदेश से प्राप्त गुहाचित्रों का संक्षिप्त अध्ययन किया गया है ताकि पाठक सीमित दायरे में न रहकर गुहाचित्रों के विषय मे पूर्णतः परिचयात्मक जानकारी प्राप्त कर सकें।

छठें अध्याय 'गुहाचित्रों के सांस्कृतिक अध्ययन' में गुहाचित्रों के रचनाकालीन व्यक्ति, समाज और जीवन का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है ताकि उस समय के समाज का जीवन्त स्वरूप हमारे स्मृतिपटल पर उभर जाय। यह अध्याय वस्तुतः शैलाश्रयों में चित्रित जीवन और समाज के मानवशास्त्रीय दृष्टियों को आधार बनाता है।

सातवें 'प्रागैतिहासिक संस्कृतिः काल-निर्णय' अध्याय में गुहाचित्रों, शैलाश्रयों के समय एवं उनके आधार पर तत्कालीन संस्कृति का काल-निर्धारण किया गया है।

आठवें अध्याय 'उपसंहार' में इस अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के साथ छूटी-छटकी बातों को सम्मिलित कर इसे पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा हुई है।
अंत में, प्रथम परिशिष्ट में सन्दर्भ साहित्य और दूसरे परिशिष्ट में शब्दों की सूची अंग्रेजी अनुवाद के साथ दी गयी है।

इस कार्य-संपादन-अध्ययन, शैलाश्रयों के सर्वेक्षण, चित्रों के संकलन, रेखांकन या छायांकन में अनेकानेक संस्थाओं, पुस्तकालयों विद्वान् अध्येताओं का सहयोग हमें प्राप्त हुआ है उनके प्रति औपचारिक आभार-प्रदर्शन कर हम उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकते। तब भी प्रसंगानुकूल उनका नामोल्लेख कर दिया गया है। इस कार्य में मेरे प्रमुख सहयोगी और सहयात्री रहे हैं सर्वश्री देवकुमार मिश्र, एस० अतिबल, अजय शेखर, राकेश तिवारी, डॉ०रामहितओझा, सुधेंदु पटेल, शेख जैनुल आब्दीन सुश्री नंदिता शर्मा आदि। मैं सहयोग के लिए चिरऋणी हूँ। पांडुलिपि के पुनरीक्षण के लिए मैं श्रद्धेय डॉ० श्याम तिवारी तथा श्री शंभुनाथ बाजपेयी का कृतज्ञ हूँ।
पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार हो जाने के बाद भी इसका प्रकाशन कठिन था, इसे संयोग ही कहा जायगा कि यह पाण्डुलिपि केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नईदिल्ली द्वारा प्रकाशनार्थ स्वीकृत की गयी और इसका प्रकाशन इतना शीघ्र संभव हो सका। मैं इसके लिए निदेशालय का आभारी हूँ।

सचिव,
लोकवार्ता शोध संस्थान
राबर्टसगंज, मिरजापुर

क्रम

जनपद मिरजापुर
वाराणसी
इलाहाबाद
माधोसिंह
गंगा नदी
मिरजापुर
भारत
लालगंज
पलिया
सिरसी
घोरावल
मध्य प्रदेश
चौपन
ओबरा
रानीताल
संकेत
रेलमार्ग
सड़क पक्की
सड़क कच्ची
शैलाश्रित गुहाचित्र
मध्य प्रदेश
बिहार

चित्र-परिचय

चित्र फलक संख्या	स्थान	विवरण
1	पंचमुखी	लम्बे अक्षर, शंख लिपि
3	लिखनियाँ (अहरौरा)	हस्ति आरोही तथा अन्य
4	चनाइनमान पूरब	अप्सरा या नतर्की, या परी
5	चनाइनमान पश्चिम	पालवाली नाव में नृत्य
6	चनाइनमान पश्चिम	पशुबलि
7	चनाइनमान पश्चिम	दम्पति-वार्ता
9	पंचमुखी	कृषि-उद्योग
10	पंचमुखी	पशुचारण
11	चनाइनमान	युद्ध
12	कण्डाकोट	नृत्य
13	लेखनियाँ	गोचारण
14	मुखादरी	सेना-प्रयाण
15	भल्दरिया	आखेट
16	केरवाघाट	यात्रा, आखेट
17	केरवाघाट	जीवाकृतियाँ, शस्त्रास्त्र
18	लिखनियाँ	नृत्यदृश्य
19	केरवाघाट	यात्रा
20	पंचमुखी	अल्पना या व्यूह-रचना
21	लिखनियाँ	बैल
22	पंचमुखी	वेणी या अस्त्र
23	पंचमुखी	युद्ध
24	कण्डाकोट	आखेट
25	पंचमुखी	गेंडा-शिकार

विशेष—चित्रफलक 2, 8 नहीं दिये गये हैं।

चि० फ० 1

चि० फ० 3
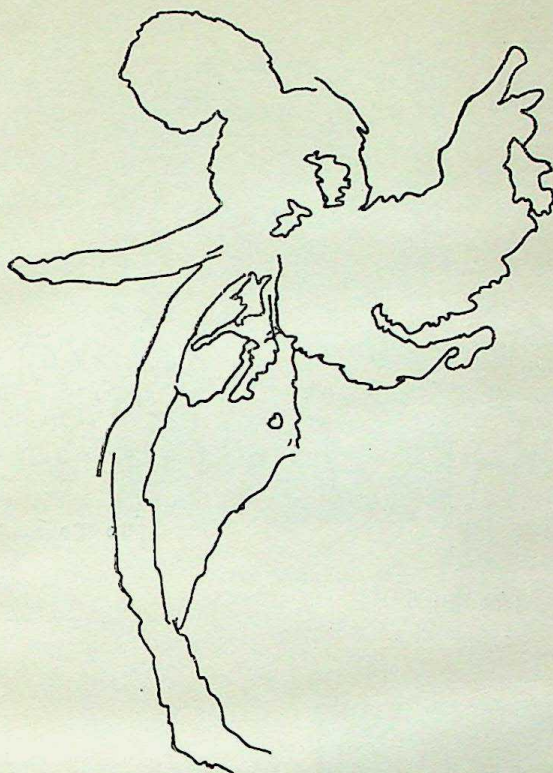
चि० फ० 4
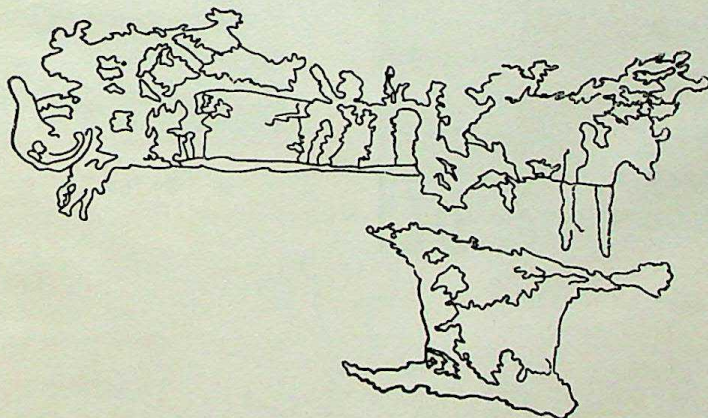
चि० फ० 5
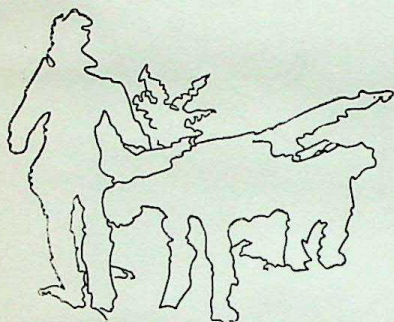
चि० फ० 6
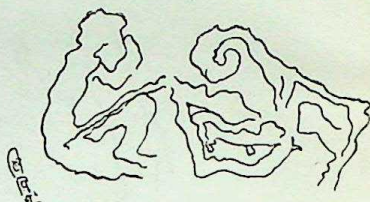
चि० फ० 7

चि० फ० 9

चि० फ० 10

चि० फ० 11
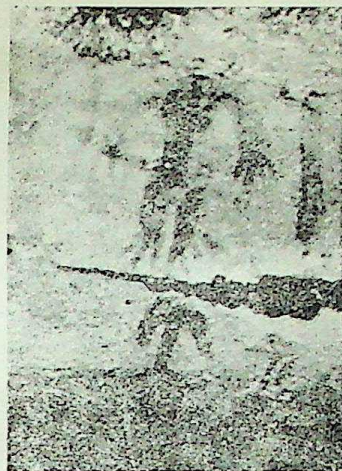
चि० फ० 12
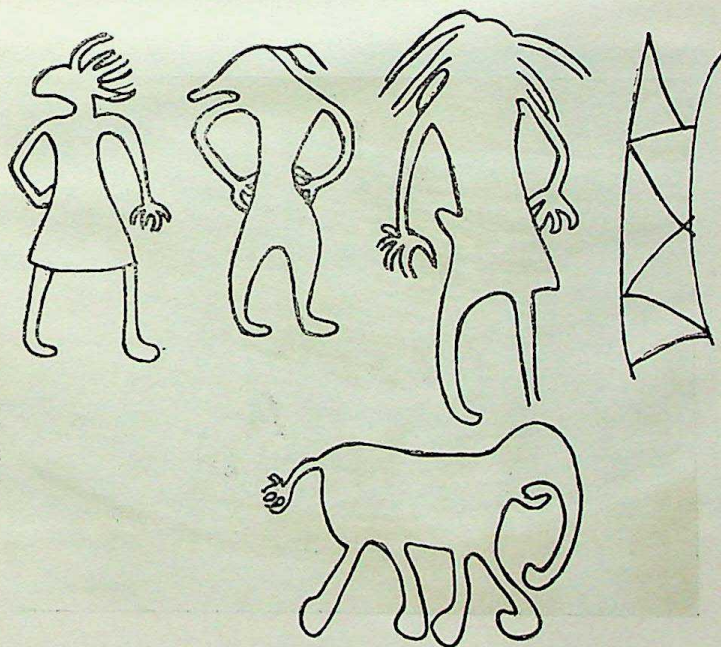
चि० फ० 13
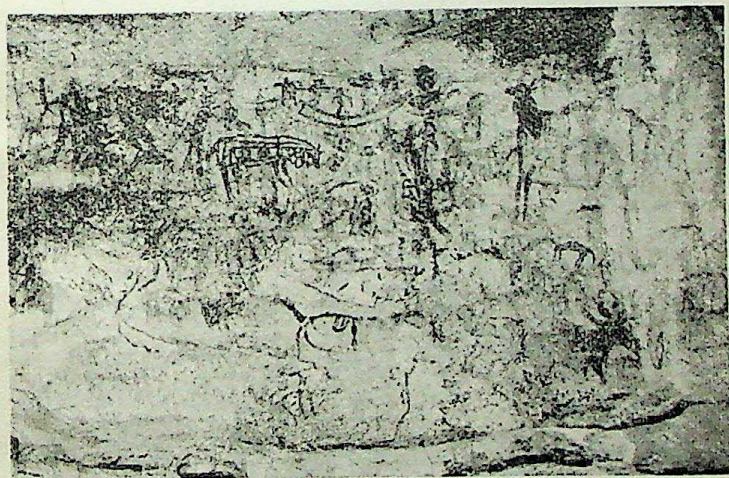
चि० फ० 14
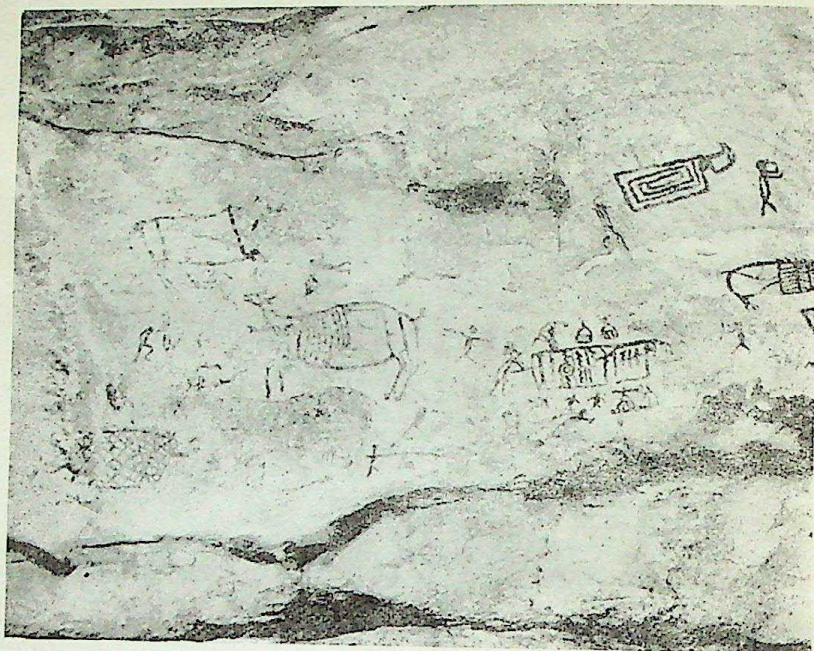
चि० फ० 15

चि० फ० 16

चि० फ० 17
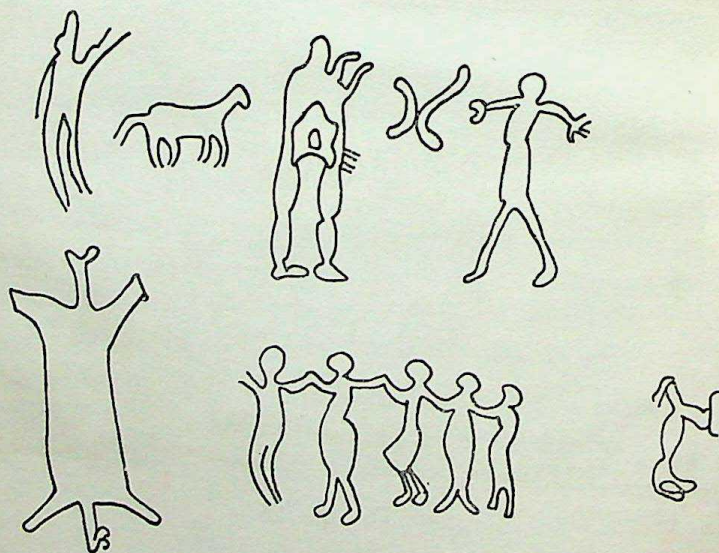
चि० फ० 18

चि० फ० 19

चि० फ० 20
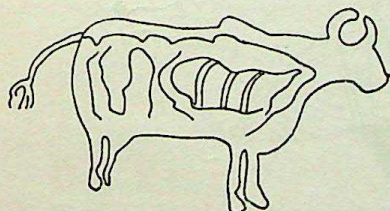
चि० फ० 21
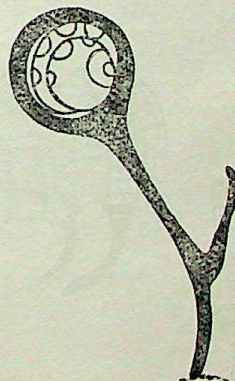
चि० फ० 22
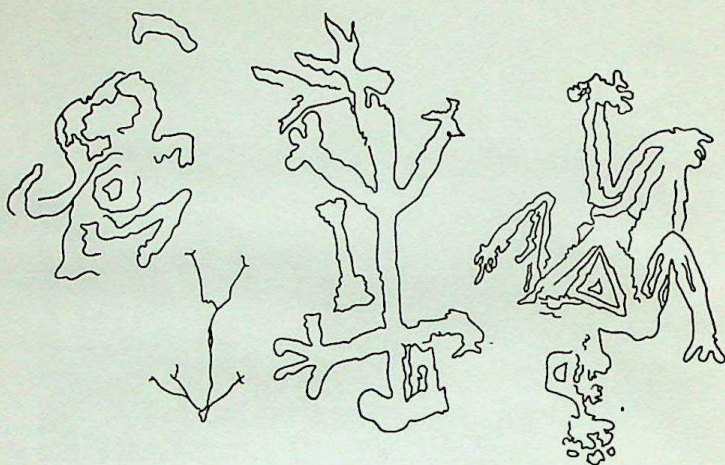
चि० फ० 23
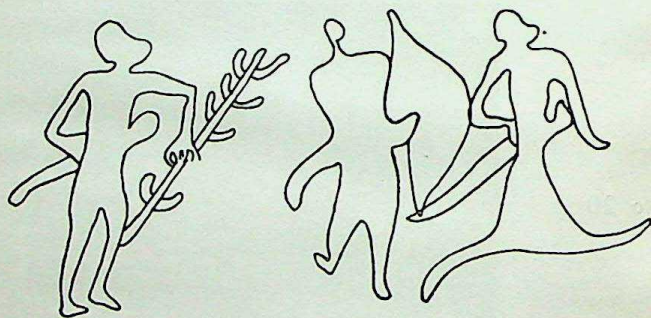
चि० फ० 24
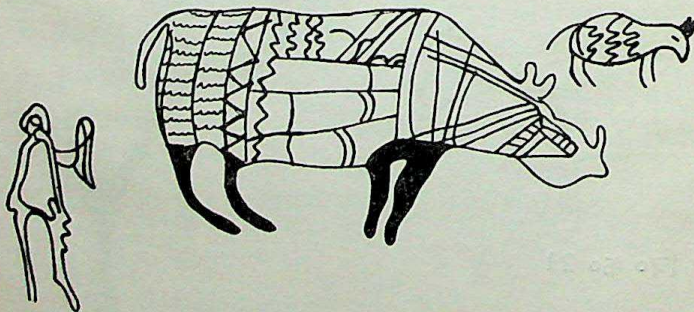
चि० फ० 25

पहला अध्याय

गुहाचित्र : उनका संकलन, अध्ययन तथा महत्त्व

भारतीय जीवन और चिन्ताधाराओं को सदा से प्रभावित करनेवाले पर्वत और वन न केवल उसे प्रेरित करते हैं वरन् वे इस देश की सभ्यता के उद्गम-स्रोत तथा आदि-केन्द्र रहे हैं। इनसे न जाने कितने मिथकीय आख्यान, पौराणिक वृत्तांत और अनुष्ठानिक क्रियाकलापों के साथ लोकवार्ताएं, किंवदन्तियां, कहानियां, घटनायें और धार्मिक आस्थाएं जुड़ी हुई हैं।

सृष्टि के प्रति जिज्ञासा सहज स्वाभाविक है। हम अपने आस-पास जो भी देखते हैं, अनुभव करते हैं, उसके बारे में अन्य बहुत-सी बातें जानना चाहते हैं। जैसे-जैसे हमारे ज्ञान का विस्तार होता जाता है, हम आदिम मानव के प्रति जिज्ञासु हो उठते हैं। इस मानव में भी, आस-पास अवस्थित तथा गोचर सृष्टि—नालों, झरनों, पर्वतों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, ग्रह नक्षत्रों आदि के प्रति सहज जिज्ञासा रही होगी। जिज्ञासा सदा से ज्ञानार्जन का साधन रही है। इसीलिए प्रागैतिहासिक काल के मानव ने भी जब नदियों को उमड़ते, बादलों को घुमड़ कर बरसते, पशु-पक्षियों को बिलखते और वनस्पतियों को फूलते-फलते देखा होगा तो उनके प्रति उसके मन में जिज्ञासा जगी होगी और उसने सोचा होगा कि आखिर ऐसा क्यों है ? अंधेरे को देख कर सोचता रहा होगा कि यह कहाँ से आ गया ? फिर सूर्योदय के समय सोचता रहा होगा, यह आलोक-लावण्य कहाँ से फूट पड़ा ? सभी वस्तुओं के उद्भव और विकास के साथ उसने अवसान और इस प्रकार के शास्वत परिवर्तन-चक्र में बँधे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि आकाशीय दृश्य तथा पार्थिव जगत में जीवों तथा वनस्पतियों के अगणित क्रिया कलापों ने उसे सोचने समझने तथा व्यक्त करने के लिए तत्परकिया होगा। प्रेरणाओं अभावों और जिज्ञासाओं ने आदिमस्तर के चिन्तनशील मानव को आत्माभिव्यक्ति के लिये अग्रसर किया होगा। गुहाचित्र उसी प्रकार की अभिव्यक्ति के लिये सार्वभौम साधन रहे हैं।

इस प्रकार अखिल निसर्ग और प्राणि तथा वनस्पति जगत में होने वाले परिवर्तन ही नहीं, दैनिक जीवन की उपयोगिता और भौतिक समृद्धि आदि के साथ रुचि,

भावना और विचार के सम्मिलित तत्वों के अनुरूप विशेष चिह्नों और आकृतियों द्वारा अभिव्यक्ति के चित्रसाधन का अनुसंधान हुआ होगा। बेगवती नदियां जब बहकर शान्त हो जाती रही होंगी और उनके किनारों पर सैकत-चिह्न बन जाते होंगे तो मानव सोचता रहा होगा कि इन्हें किसने बना दिया ? निश्चय ही इन सभी बातों और कार्य व्यापारों ने उसे सर्वशक्तिमान की कल्पना के लिये आधार प्रदान किये होंगे। इन क्रियाओं को देखकर उसने स्वयं हाथ-पाँव मारे होंगे। इतना ही नहीं, उसने वस्तुओं को छूकर, उन्हें चख कर, उन्हें गिरा-उठा कर उनके अन्तर्निहित गुणों को जाना और अनुभव किया होगा। हिंस्र पशुओं से अपनी रक्षा के लिए उन पर पत्थर फेंका होगा और फिर बाद में उसे रक्षा का साधन मान लिया होगा। पत्थर पर पत्थर मार या परस्पर रगड़कर आग जलाई होगी और उसने भुने हुए मांस को पहली बार चख कर नये स्वाद का अनुभव किया होगा। इस तरह उसका ज्ञान क्रमशः बढ़ता गया होगा। बाद में उसने रहने के सुरक्षित स्थान भी ढूंढ़े होंगे। फिर उसे सजाया-संवारा होगा और लाल, काले, कत्थई, सफद, नीले, पीले आदि रंगों का उपयोग भी मानव ने पहली बार किया होगा। सुरक्षा का अनुभव करते हुए आदिम मानव पूर्वजों ने इन शैलाश्रयों को अपना स्थायी निवास बना लिया होगा। इस प्रकार उन्होंने प्राकृतिक विपत्तियों, महामारियों, हिंस्र पशुओं, कष्टदायी जीव-जन्तुओं से बचाव के लिये गुहावासों का एक प्राकृतिक दुर्ग के रूप में उपयोग किया होगा। यही आवास विभिन्न मानव जातियों के मूल स्थान तथा सभ्यता के केन्द्र बने होंगे।

गुफाओं के शिला-खण्डों पर बनी रंग-विरंगी मानवाकृतियाँ, जीवाकृतियाँ, युद्ध, आखेट दृश्य हमें सोचने को विवश करते हैं कि आखिर उस समय का मानव कैसा रहा होगा ? उसकी जीवन-शैली कैसी रही होगी ? उसका खान-पान रहन-सहन, वेशभूषा क्या रहा होगा ? उसके परिवार का स्वरूप क्या रहा होगा ? उसका आचार-विचार और व्यवहार कैसा रहा होगा ? वह वन्य पशुओं का आखेट किस प्रकार करता रहा होगा ? और फिर उन्हीं के बीच रहकर उनमें से कुछ को पालतू कैसे बनाया होगा ? जाड़े, गर्मी और वर्षा के दिन वह कैसे काटता रहा होगा ? सचमुच कोई नहीं जानता कि इन प्रश्नों के अनुमानों के आधार पर अनेक उत्तर हो सकते हैं।

विषय-ज्ञान—आज के वैज्ञानिक युग के मानव ने आधुनिक विषयों के अध्ययन के नये-नये आयाम खोजे हैं। पहले पुरातत्व का विषय प्राचीन इतिहास के अन्तर्गत स्वीकृत था। किन्तु जैसे-जैसे विषय-सामग्री सामने आती गयी, अपने प्राचीन इतिहास को यथार्थतः जानने की हमारी इच्छा उत्कट होती गई। फलतः पुरातत्व इतिहास की खोज तथा अध्ययन या स्वतन्त्र विषय बनता गया। इसका महत्व तब इसलिए भी नहीं समझा गया था क्योंकि इस सामग्रा के

वैज्ञानिक संकलन, संपादन और अध्ययन का कार्य सदैव श्रम और व्यय-साध्य रहा है। निश्चित उद्देश्य से कार्य-क्षेत्र (फील्ड) का चुनाव कभी-कभी संग्रहकर्ता या अध्येता को जोखिम उठाने के लिए भी विवश कर देता है। सामग्री-विशेष के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपकरणों तथा साधनों के अतिरिक्त साहस, लगन, अनुभव, उत्साह और प्रस्तावित लक्ष्य की निश्चितता आवश्यक है। जहां तक इस प्रकार की सामग्री के संकलन का प्रश्न है, यह पुरातत्व के अन्य विभागों की अपेक्षा कहीं अधिक रीति-वैज्ञानिक है। जैसे-तैसे किया हुआ सामग्री-संकलन अध्ययन के लिए प्रामाणिक नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें अनेक समस्यायें तथा व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती हैं। आर्थिक संकोच, समय की कमी, अच्छे फोटो कैमरा अथवा रेखा-चित्र का अभाव, सहायकों का साथ न देना, जंगली जानवरों आदि से असुरक्षा, बन्दूक तथा अन्य शस्त्रास्त्रों का अभाव, प्रयोगशाला का न होना, संग्रहकर्ता तथा बनवासियों के बीच तालमेल का न बैठना, यातायाता के साधनों का अभाव, वांछित लगन, परिश्रम व उत्साह की कमी, विषय के प्रति उपेक्षा-भावना, संग्रह की वैज्ञानिक विधि की अज्ञानता आदि कमियों तथा बाधाओं के कारण भी यह कार्य साधरण: शोधकर्ता या अध्येता की क्षमता के बाहर हो जाता है। इन्हीं अभावों के कारण इन पंक्तियों के लेखक के सामने भी ये कठिनाइयां रोड़े बन कर आती रही हैं।

कार्यारम्भ तथा अभिप्राय— इस तरह की सामग्री का संकलन-कार्य जहां कठिन है, वहीं बहुत ही मनोरंजक, आनन्ददायक तथा रुचिकर भी। ऐसे संग्रहों का उद्देश्य प्रस्तुत इतिहास पूर्व के यत्रतत्र बिखरे रत्नों का उद्धार करना ही नहीं; उसका कलात्मक, सांस्कृतिक तथा तुलनात्मक अध्ययन करना भी है। गुहा-गह्वरों में प्रच्छन्न तथा विलुप्तप्राय, पुरांकालिक सामग्री से आदिमस्तर के मानवीय प्रयत्नों पर प्रकाश पड़ता है। वस्तुतः किसी देश,स्थान या काल की धरोहर ऐसी सामग्रियां अथवा कलाकृतियां प्राय: उसकी परंपरागत सांस्कृतिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक सामाजिक और कलात्मक चेतना की कसौटी हुआ करती हैं। प्रयोजन तथा अभिप्राय प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष प्रस्तुत संग्रह कार्य का भी यही है।

अपने थोड़े से अनुभवों के आधार पर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि कभी-कभी संयोगवशात् ऐसे कार्य भी हो जाते हैं जो अयाचित होते हुए काफी महत्वपूर्ण होते हैं। गुहा चित्रों के सम्यक् अध्ययन की मेरी कोई वांछा नहीं रही, जैसा कि आरंभ में ही संकेत किया जा चुका है, तब भी जो चित्र मेरे पास थे या जिनका उल्लेख विद्वानों ने यथास्थान किया है, को आधार बना कर अध्ययन का प्रारूप तैयार किया। बहुत दिनों तक यह अध्ययन कार्य आलमारी की शोभा बढ़ाता रहा। इसी बीच

कुछ विशिष्ट विद्वानों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उनसे उन चित्रों के संबंध में बातें हुई। उन्होंने उसके महत्व को स्वीकार किया और कहा कि ऐसे जहां भी चित्र प्राप्त हों, उन सब का संकलन कर डालना उपयोगी होगा। उनके आदेशानुसार लगभग दो हजार चित्रों का संकलन कर डाला और छिटपुट लेख भी लिखे जिनकी सुधी पाठकों पर अच्छी प्रतिक्रिया रही। लोकवार्ता शोध संस्थान के गठन के साथ-साथ डॉ श्याम तिवारी के निकट संपर्क में आने का अवसर मिला और उन्होंने इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा दी। उन दिनों मैं उन्हीं के निर्देशन में 'लोरिकायन' के संकलन और अध्ययन का कार्य कर रहा था। लोरिकायन के लिए जिन क्षेत्रों में जाना पड़ता था, उन्हीं के आसपास गुहाचित्र भी देखने को मिल जाते थे। इसलिये उन गुहा चित्रों के संकलन, रेखांकन अथवा छायांकन द्वारा सामग्री जुटाता रहा। इसी बीच काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के इतिहास तथा पुरातत्व विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ० लल्लन जी गोपाल से भी इस विषय में बातें करने का अवसर मिला। उन्होंने चित्रों को वर्गीकृत कर उनका अध्ययन शीघ्र पूरा कर लेने पर बल दिया, जिसके परिणामस्वरूप अध्ययन का कार्य भी पूरा हुआ। तदुपरान्त उस संग्रह और अध्ययन को मैंने, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'स्वतन्त्र भारत' के संपादक तथा पुरातत्व के विशिष्ट विद्वान स्व० अशोक जी, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक श्री ठाकुर प्रसाद सिंह प्रसिद्ध, समालोचक आचार्य किशोरी दास वाजपेयी, डॉ० नामवर सिंह, कला-मर्मज्ञ डॉ० जगदीश गुप्त और इतिहास और पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त जैसे विद्वानों तथा लेखकों को भी दिखाया और उनसे विचार-विमर्श किया। सभी ने कार्य की सराहना की और उसे यथाशीघ्र प्रकाशित करा लेने के लिए उत्साहित किया। उत्तर प्रदेश सांस्कृतिक कार्य विभाग के निदेशक श्री भवानी शंकर शुक्ल के साथ चित्रित शैलाश्रयों को निकट से जाकर देखने, सर्वेक्षण करने का भी सौभाग्य मिला। उनका तथा उनके विभाग में कार्य करने वाले साहसी एवं परिश्रमी अध्येता श्री राकेश तिवारी का सहयोग भी बीच-बीच मिलता में रहा। उन्होंने कुछ पुस्तकों के नाम भी सुझाये। सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री अमृत लाल नागर ने भी प्रेरित किया और उन्हीं के प्रयत्न से लखनऊ टेली विजन केन्द्र पर उनमें से कुछ चित्रों का प्रदर्शन और मुझसे साक्षात्कार भी कराया गया। दर्शकों, श्रोताओं ने उसे बहुत पसंद किया। इन्हीं संदर्भों में कार्य को गति मिली। चित्रों को देख कर और विषय की अन्य पुस्तकों को पढ़ कर जो निष्कर्ष निकाला गया, वह यह था—

(1) कि इस विषय पर कार्य करने वाले लेखकों ने मिरजापुर की अनेक चित्रित गुफाओं को छोड़ दिया है जो अनेक दृष्टियों से काफी महत्वपूर्ण हैं।

(2) जिन गुफाओं और जिन चित्रों का उन्होंने उल्लेख किया है, उनमें बहुत कुछ भिन्नता है। तात्पर्य यह कि चित्रों को ठीक से न समझ कर उनके बारे में कुछ लिख दिया गया है।

(3) कुछ और महत्वपूर्ण और पुराने चित्र उन्हें नहीं मिल सके हैं जिनका अध्ययन की दृष्टि से बड़ा महत्व है।

(4) मिरजापुर तथा उसके बाहर के चित्रों का तुलनात्मक और सांस्कृतिक अध्ययन जिस रूप में प्रस्तुत किया जाना था, नहीं हो सका है।

(5) मिरजापुर के चित्रों का समग्र और विशेष अध्ययन अलग से किया जाना चाहिए, क्योंकि प्रागैतिहासिक काल के ये चित्र अधिकतर विन्ध्य की पहाड़ियों में ही पाये जाते हैं और मिरजापुर उनका केन्द्र है।

क्षेत्र—गुहाचित्रों या चित्रित शैलाश्रयों का क्षेत्र विस्तीर्ण है। अब तक हुई खोजों के अनुसार यूरोप में गुहाचित्रों का खोज कार्य सबसे अधिक हुआ है। 1879 के ग्रीष्म में स्पेन के पुरातत्व के प्रसिद्ध विद्वान मार्सेलिनों डी० साउटुवोला ने आल्टामिरा की गुफाओं के चित्रों को पहली बार खोज निकाला था। उस गुफा में चित्रित बैल के चित्र को देख कर उनकी लड़की मेरिया को आश्चर्य हुआ था। उन्होंने उस चित्र को जब बहुत पुराना बताया था तो लोगों ने उस पर विश्वास नहीं किया था। किंतु उनकी मृत्यु के उपरान्त उस चित्र का महत्व स्वीकारा गया और तब उन चित्रों के अध्ययन का श्री गणेश हुआ। इसके बाद 1940 में फ्रांस के लास्काक्स के शिकार दृश्यों की खोज वहाँ के चार युवकों द्वारा की गयी। फिर अफ्रीका के सहारा तथा लीबिया क्षेत्र की मानवाकृतियों सहित शिकार और युद्ध के चित्र भी खोज निकाले गये। इसके बाद तो दक्षिणी अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में भी चित्रित गुफाओं पर कार्य प्रारंभ हो गया। भारत में भी इन चित्रों की ओर ध्यान गया और उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश के अतिरिक्त कुछ चित्र राजस्थान, तथा बंगाल में भी प्राप्त हुए, तथापि जिस क्षेत्र से उल्लिखित शैलाश्रयों का संकलन और अध्ययन किया गया है वे मुख्य रूप से गंगा और सोन के मध्य अवस्थित होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण हैं। विन्ध्य और कैमूर की सुविस्तृत वादियों में और भी अनेक छोटी-छोटी नदियां-बेलन, कनहर, रेंण, बिजुल, जरगो आदि तथा नाले इन नदियों में आ कर मिलते हैं। इनके तटों पर पहाड़ियों में अनेक चित्रित शैलाश्रय हैं जिनमें ये चित्र पाये जाते है। यह क्षेत्र पुरातत्व के अतिरिक्त लोकवार्ताओं के लिए भी सदा

से उर्वरक रहा है । उत्तर प्रदेश, बिहार, और मध्य प्रदेश के संधिस्थल पर अवस्थित मिरजापुर में आदिवासी तथा वन्य जातियां भी सदा से निवास करती आ रही हैं । अतः प्रस्तुत सामग्री मुख्यतः इसी अंचल से संकलित हुई है । साथ ही मिरजापुर और चुनार को सम्मिलित करते हुए अहरौरा और राजगढ़ के क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लिया गया है जो मैदानी भी है और पहाड़ी भी । संकलन कार्य के दौरान यह अनुभव हुआ कि उस क्षेत्र में अनेक चित्रित शैलाश्रय हैं जिनकी खुदाई भी कराई जाती तो कुछ और तथ्य भी सामने आ सकते थे, किन्तु यह कार्य दुस्तर था और व्यय-साध्य भी । यह अध्ययन का एक अलग विषय भी हो सकता है ।

विषय का महत्व—आरम्भ में इन चित्रों का संकलन उतना महत्वपूर्ण न लगा, किन्तु जैसे-जैसे यह कार्य आगे बढ़ता गया, ऐसा अनुभव होता गया कि यह कार्य न केवल पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अपितु साहित्य, संस्कृति, मानव शास्त्र, धर्म-शास्त्र लोकवार्ता, इतिहास और कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । यह जीवविज्ञान और समाजशास्त्र का भी महत्वपूर्ण विषय है । क्योंकि—

(1) भाषा, व्यक्ति और समाज की अभिव्यक्ति का माध्यम है तो इन चित्रों की भी अपनी एक भाषा है । प्रागैतिहासिक काल के मानव ने चित्रों को ही भाषा का रूप दिया और उसमें अपने भावों, विचारों, अपने दैनिक जीवन क अनुभवों को चित्रित किया है ।

(2) इन चित्रों में तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

(3) इन चित्रों से तत्युगीन मानव की कलाप्रियता का परिचय मिलता है ।

(4) जीवन, साहित्य और कला में अपने आप समन्वय स्थापित हो जाता है । सहस्त्राब्दियों से छिपी, बिखरी तथा लुप्त होती तत्कालीन मानव की अमूल्य धरोहर अन्य अनेक विषयों के अध्ययन के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर देती है ।

(5) आमोद-प्रमोद, नृत्य-संगीत से संबन्धित चित्रों से तत्कालीन नृत्य एवं संगीत की परंपरा पर भी विस्तृत प्रकाश पड़ता है ।

इस प्रकार इन चित्रों का बहुआयामी महत्व है । इनसे उपरिलिखित विषयों और ज्ञान की शाखाओं के आरंभिक स्वरूप एवं उनके अध्ययन के मौलिक स्रोतों पर भी विस्तृत प्रकाश पड़ता है ।

इस सम्बन्ध में हुए कार्य की समीक्षा—सच पूछा जाय तो इस सम्बन्ध में विशेषकर मिरजापुर के शैलाश्रयों को ले कर अद्यावधि कोई ठोस कार्य हुआ ही नहीं है। मिरजापुर के गुहा चित्रों की ओर सबसे पहले ध्यान आकृष्ट हुआ था 1880 में। आर्चिवाल्ड कार्लाइल महोदय ने एक आरकियोंलाजिकल सर्वे के क्रम में और काक्बर्न महोदय ने 'इंपीरियल गजेपियर आफ इंडिया' और 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ मिरजापुर' की सामग्री के रूप में उल्लेख किया है। उन्होंने अहरौरा के पास लेखनियां के चित्रों को पहली बार देख कर उनके महत्व पर प्रकाश डाला था और इसके अध्ययन की अनेक संभावनाओं पर बल दिया था। किन्तु उन्हें भी बहुत थोड़े चित्र ही मिल पाये थे जिनके आधार पर इन कृतियों के आदिम रचयिताओं और उनकी संस्कृति के हर पहलू पर विचार करना संभव न था। लेकिन यह कम महत्व-पूर्ण बात न थी कि उन्होंने इनका पता ही नहीं लगाया अपितु इनके अध्ययन के महत्व का भी पहली बार प्रतिज्ञापित किया।

लखनऊ संग्रहालय के लिए के० एन० दीक्षित ने 1918 में लेखनियां के चित्रों के फोटोग्राफ लिये थे, साथ ही धोरावल के चित्र भी लिये गये थे। इसके बाद परसी ब्राउन का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुआ था। उन्होंने लेखनियाँ के पास ही कुछ नये चित्रों को खोज निकाले और एतद् संबंधी नये तथ्य उद्‌घाटित किये। किन्तु इन्हें भी अनेक महत्वपूर्ण गुफायें प्राप्त नहीं हो सकीं। परिणाम-स्वरूप सारा अध्ययन संभावनाओं और अनुमानों के बीच अपूर्ण रह गया। इसके अलावा 'इण्डियन आर्कियोलॉजी रिव्यू', 'जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी बेंगाल' तथा 'सम-आस्पेक्ट्स ऑव ईडियन आर्कियोलॉजी' (डॉ० बी० डी० मिश्र) 'मेन एण्ड इन्वायरमेंट भाग 6' (मोन्पाल एण्ड मिश्र) आदि कृतियों के द्वारा महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। इनसे तत्कालीन संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है तथापि इन सब का सांस्कृतिक एवं तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है जिसकी पूर्ति का प्रयास इस पुस्तक के माध्यम से हुआ है।

इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया मनोरंजन घोष ने। उन्होंने न केवल चक्रधरपुर, (बिहार) लेखनियां (मिरजापुर) के चित्रों का विवरण प्रस्तुत किया, अपितु पंचमुखी, लेखनियां (राजपुर) विजयगढ़ आदि चित्रों को भी निकट से देखा, उनके विषय में लिखा और उनके छाया-चित्र रंगीन प्लेट्स के रूप में भी तैयार किये। इनके अध्ययन से अनेक महत्वपूर्ण तथ्य तो सामने आये, किन्तु प्रागैतिहासिक मानव की कला-भावना, सौन्दर्यप्रियता, आचार-विचार और व्यवहार की बातें अविचारित रह गयीं और तत्कालीन सामाजिक जीवन पर भी उतना प्रकाश न पड़ा जितना अपेक्षित था।

चंबल घाटी क्षेत्र में स्थित छिबड़ा नाला के एक शैलाश्रिव गुफा में अंकित पशु-समूह, जिसके बीच एक छिपकली जैसी आकृति भी बनी है, ऊपर एक दंडधारी पुरुष सजग मुद्रा में चित्रित है, ई० आ० (1957-58) में कुछ अन्य चित्रों के साथ प्रकाशित हैं। ये चित्र मिरजापुर के पंचमुखी के चित्रों से मिलते-जुलते हैं। एच० जी० वेल्स ने 'स्टोन एण्ड स्टोरीज' में भी शैलाश्रयों का उल्लेख किया है, किन्तु उनके विवरण और चित्र मिरजापुर के चित्रों के मेल में नहीं है। वर्किट ने 'दी ओल्ड स्टोन एज' में भी यही बात कही है। आरकियोलाजी एण्ड सोसाइटी, से प्रकाशित 'प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियां' में धनुर्धरों तथा योध्दाओं के चित्र दिये गये हैं जो अपर्याप्त तथा अपूर्ण हैं। कनिंघम ने रावर्ट्सगंज के समीप संखलिपि के एक एक फुट के अक्षर देखे थे जिनका विवरण उन्होंने आरकियोलाजी सोसाइटी की रिपोर्ट (खण्ड 1) में दिया है और उन्हें सातवीं-आठवीं सदी ईसवी का माना है। लगता है उन्होंने पंचमुखी के अक्षरों को नहीं, चित्रों को ही देखा था[1]। इसके अतिरिक्त वहीं कुछ और चित्र भी बने थे जिनका उन्होंने नामोल्लेख तक नहीं किया। बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी से प्रकाशित 'भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि' (डॉ० एच० गार्डेन) के अन्तर्गत बिहार के गुहाचित्रों को दृष्टिकोण में रखते हुए सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल खंड 3, तथा जे० के० काकवर्न के 'ड्राइंग्स इन द कैमूर रेंज' नामक लेख में, जो रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हैं. में कुछ ही प्रकार के चित्रों का उल्लेख किया गया है। उसमें मिरजापुर के सभी स्थानों के सभी प्रकार के चित्रों का प्रामाणिक संकलन तथा अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

इसी प्रकार 'भीम बैठका की गुफाओं के रहस्य' शीर्षक लेख[2] में धीरेन्द्र नाथ मिश्र ने, 'पांच अजानी गुफाएँ' शीर्षक लेख तथा 'सोन के पानी का रंग' नामक पुस्तक में देव कुमार मिश्र ने[3] क्या 'ग्वालियर में आदिमानवों की बस्ती थी' में डॉ० बृजवासी लाल ने[4], 'मुखा की दरी' नामक लेख में शेख जैनुल आब्दीन ने[5], मिरजापुर के गुहा

---

1. ए० एस० बी० फरवरी, 1883, पृष्ठ49, ए० एस० बी० 1983 पृष्ठ 123, इंडियन पेंटिंग पृष्ठ 16, 1911 पृष्ठ-19 से 200, पांडुलिपि मनोरंजन घोष 166

2. धर्मयुग 30 सितम्बर, 1973

3. धर्मयुग सितम्बर, 1977

4. धर्मयुग 2 जनवरी, 1977

5. आज सायं समाचार 11 फरवरी, 1973

चित्र शीर्षक रेडियो वार्ता में श्री संतबख्श भारतीय ने[1], 'शेर बबर से मिलिए चलिए' शीर्षक लेख में जे० सी० डैनियल ने[2], 'ए कल्चरल हिस्ट्री आफ अफ्रीका 1933 एण्ड कल्तुक्रीज' में कल्तुरजेज चीटें ने, तथा जी० एच० गार्डन ने 'ए लाडेकवरटेड्स डू तासिली पेरिस' में हेनरी लोठे ने, 'आन द ट्रेक आफ डिसकवरी' में डी० स्वीस्सकी ने, प्रोग्रेस पब्लिशर, मास्को, 'हिन्दू सभ्यता' में डॉ० राधा कुमुद मुकर्जी ने, 'गजेटियर उत्तर प्रदेश सीमा प्रान्त भाग-1' आदि में जो चित्र दिये गये हैं या जिन चित्रों का अध्ययन-विवरण प्रस्तुत किया गया है वह विवरणात्मक होते हुए शोधपूर्ण नहीं हैं।

श्री राकेश तिवारी ने 'थिरकते शैलचित्र' नामक पुस्तक में मिरजापुर के शैलाश्रित गुहाचित्रों का अच्छा अध्ययन प्रस्तुत तो किया है, किन्तु उन्होंने भी सभी चित्रों का सर्वाङ्गीण अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया। केवल नृत्य-संगीत के दृश्य-चित्रों को ही प्रमुखता दी।

मध्य प्रदेश में उज्जैन की प्रमुख संस्था 'इन्स्टीट्यूट ऑफ रॉकआर्ट, ने भारत के छह हजार से अधिक शैलाश्रित गुफाओं के चित्रों का संग्रह छायांकन तथा रेखांकन करके किया है जो अध्ययन की दृष्टि से काफी उपयोगी होते हुए प्रकाशित नहीं हुए हैं।

मध्य प्रदेश राज्य के पुरातत्व निदेशालय तथा विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के सम्मिलित प्रयास से विद्वानों का एक दल सर्वेक्षण के लिए निकला था जिसने कुल लगभग 1400 शैलाश्रयों का निरीक्षण करके भीम बैठका के लगभग 750 शैलाश्रयों का विवरण प्रस्तुत किया था। इसी प्रकार लोकवार्ता शोध संस्थानों के रावर्टसगंज संग्रहालय में २००० चित्रों का संग्रह किया गया है। तब भी यह सारा का सारा यत्न अधूरा ही है।

प्रस्तुत सामग्री—उपर्युक्त विवरणों से जिन अभावों की ओर संकेत किया गया है, उनकी पूर्ति के उद्देश्य से किया गया यह कार्य विविध समस्याओं से जुड़ा है। इसमें लेखक को कितनी सफलता मिली है, इसका निर्णय सुधी विद्वानों तथा पाठकों पर है, तथापि संतोष इस बात का अवश्य है कि एक अधूरा किन्तु महत्व-पूर्ण कार्य के लिए लेखक ने अपने श्रम, समय और शक्ति का भरपूर उपयोग किया तथापि यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि यह पुस्तक गुहाचित्रों पर किये गये

---

1. आकाशवाणी, वाराणसी, 22 जून, 1978

2. धर्मयुग 6 अक्टूबर, 1974

अध्ययन की दृष्टि से सम्पूर्ण है। अभी भी अनेक ऐसी गुफाएँ हैं जिन तक पहुँचा ही नहीं जा सका है। लेकिन इस अध्ययन की मूल सामग्री अपने आप में पूर्ण है। मिर्जापुर के इतने चित्रों का उल्लेख अन्य किसी पुस्तक में नहीं किया गया है। चित्रों के अध्ययन में इस बात का ध्याय रखा गया है कि सभी प्रकार के चित्र आ जायं जिससे वर्गीकरण में भी सुविधा हो, यह भी ध्यान में रहा है कि हर स्थान के चित्रों को सन्दर्भित किया जाय ताकि तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा हो। ये चित्र और विवरण विषय के बहुरंगी आयामों को उद्घाटित करते हैं तथा मूल विषय की ओर भी संकेत करते हैं। कुल मिलाकर यह सामग्री गुहाचित्रों पर संम्पूर्ण अध्ययन, अन्तरप्रान्तीय और अन्तरदेशीय चित्रों के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करेगी, ऐसा विश्वास है।

संकलन की पद्धति तथा बाधायें—इस प्रसङ्ग में इन पंक्तियों का लेखक सौभाग्यशाली कहा जायेगा कि लोक-साहित्य की बहुमूल्य देन के उद्धार-क्रम में इन शैलाश्रयों के अध्ययन भी प्रस्तुत कर सका। संग्रह कार्य में लगभग 5 वर्ष का समय लगा। प्रथमवार में सभी गुफाओं को देखने एवं उन पर सामान्य टिप्पणी या विवरण लिखने का कार्य हो सका। इस कार्य को शुरू करने में भी अनेक कठिनाइयाँ सामने आयीं। साधनों की कमी उनमें मुख्य थीं। घने जंगलों एव पहाड़ियों की यात्रा न तो अकेले संभव थी और न बिना शस्त्रास्त्र के ही। इसलिए अधिकतर यात्रायें 2 से 10 व्यक्तियों के समूह में की गयीं। जो स्थान काफी भयावह थे, जैसे सीता कुण्ड, केरवा घाट, विजयगढ़, कंडाकोट आदि, उन स्थानों की यात्रा एक या दो बार से अधिक संम्भव न हो सकी, फिर भी हमने यात्रायें कीं और कहना न होगा कि पहली यात्रा ही जान जोखिम में ड़ाल कर की गई थी। जिस स्थान पर वे चित्र हैं, वहाँ शेर-चीते रहते थे। हम लोगों ने अपनी आँखों से उन्हें देखा भी, किन्तु साहस करके संकलन का कार्य हम संपादित करते रहे। इन स्थानों की यात्रा ट्रक, ट्रैक्टर, जीप, घोड़ा, खच्चर अथवा पैदल करनी पड़ी। इसी प्रकार कंडाकोट, लेखनियाँ, (राजपुर), मुखादरी, की यात्रायें भी जीप या ट्रैक्टर से की गयीं। इसी प्रकार कंडाकोट, खोड़वा, केरवा, विजयगढ़, बिंढम, आदि स्थलों की यात्रायें बड़ी दुर्गम, भयावह और जानलेवा रहीं। अपने साथ सशस्त्र वनवासियों को लेकर यात्रा करने के कारण खतरों से बचा जा सका। कुछ ऐसे शैलाश्रय भी मिले जिन तक पहुँचना कठिन था। अतः उनके चित्र पेड़ों एवं सीढ़ियों पर चढ़ कर लिये। कुछ ऐसी गुफायें भी मिलीं, जिनमें अंधेरा छाया हुआ था और अन्दर सर्पो और बिच्छुओं का डेरा था। पहले उन गुफाओं में पत्थर फेंक कर उन्हें भगाया गया और तब छायांकन या रेखांकन किया गया। अधिकतर गुफायें पर्वत के ऊपरी भागपर अथवा उपत्यकाओं में हैं जहां पहुँचने में पांव फिसलने और गिर कर हजारों फीट नीचे

गिर पड़ने का भय भी बना हुआ था। लेखनियां की यात्रा में तो हम लोगों की समूह मृत्यु भी लगभग अवश्यंभावी थी, किन्तु इसे संयोग ही कहना चाहिए कि हम लोग उबर आये। इस यात्रा में हम सब पहाड़ी नदी से घिर गये थे। उसमें हमारी जीप बहने लगी थी। सौभाग्य ही था कि हम मृत्यु की भयावहता से बचाव कर सके। इसी तरह की यात्रा मुखादरी की थी। हमारे सहयोगी एस० अतिबल गिरते-गिरते बचे थे। वे गिरते तो सैकड़ों मीटर नीचे जाते और उनकी लाश तक का पता न चलता, लेकिन इतने सब के बाद भी यात्रा में आनन्द ही आता था। संकलन कार्य के दौरान हमारा जो समय बीता। वह कदाचित् जीवन का सर्वाधिक रोमांचकारी, आनन्दप्रद, और महत्वपूर्ण समय था। हम एकान्तवासीयोगी की तरह समय व्यतीत करते तथा ग्रामीणों के संग रह कर उनके अनलंकृत, सहज, स्वाभाविक और निश्छल जीवन के साथ घुल-मिल गये थे। भूख लगती तो उनसे उनकी सूखी रोटी, माग कर खाने में अतिशय आनन्द का अनुभव करते। रात रुकने की आवश्यकता पड़ती तो उन आदिवासियों के नृत्य, गीत और कथावार्ता का भी आनन्द लेते। जंगल की यात्रा में जब अन्न-जल मयस्सर न होता तो फल-फूल पर ही रातें काट लेते, किन्तु उसमें भी एक अव्यक्त आनन्द का ही अनुभव करते थे।

यात्रा के क्रम में प्राप्त चित्रों का संग्रह कुछ छायांकन द्वारा और कुछ ट्रेसिंग पेपर पर रेखांकन द्वारा करता गया फिर बाद में उन्हें कार्बन द्वारा रेखांकित कर लिया करता। इन चित्रों के संकलन के साथ ही साथ उनसे संबंधित लोक प्रचलित किंवदन्तियों को भी लेखबद्ध करता जाता था ताकि इनका उपयोग भी विषय के वैविध्यपूर्ण अध्ययन के लिये किया जा सके। इस बीच जो सदर्भ ग्रन्थ प्राप्त होते गये, उनका भी अध्ययन करता गया और उनसे अपने कार्य एवं सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन अपने आप होता गया। इस प्रकार सामग्री यात्रा-पथ में ही तैयार होती गई।

कार्य की दिशा और उद्देश्य,—प्रस्तुत संकलन कार्य के आरंभ में संकलनकर्ता को संकलन की किसी वैज्ञानिक विधि का ज्ञान नहीं था और न उसके अध्ययन के सैद्धान्तिक पक्ष तथा उद्देश्य की ही स्पष्ट जानकारी थी। किन्तु इन चित्रों को देख कर उत्सुकतावश भी अनेक अंशों में यह कार्य पूरा हो सका।

चित्रों के संकलन का उद्देश्य प्रागैतिहासिक काल के मानव की जीवनविधियों का अध्ययन करना मुख्य था। चित्रों से इस रहस्य की जानकारी हो जाती है कि उस युग का मानव आखेटजीवी था। उसकी आशायें, आंकाक्षाएं सीमित थीं। वह खोह-कन्दराओं में रहता और जंगली जानवरों को मार कर अपना पेट पालता

था। वह अस्तित्व-रक्षा, सम्मान-रक्षा अथवा प्राण-रक्षा के लिए युद्ध भी करता और प्रेम भी। जहां वह जीवों को मारकर अपनी उदरपूर्ति करता था, वहीं वह जीवों से प्रेम भी करता था। जीवजन्तु हीं उसके सहचर थे। वह उनके प्रति दया-करुणा का भाव रखता था। पशु-चारण उस युग के मानव की विशेष वृत्ति थी। वह खाली समय में नृत्य-संगीत का आनन्द भी लेता था। कला के प्रति उसमें अगाध प्रेम था। वह पूजा-पाठ और देवाराधना में भी दिलचस्वी रखता था। उस मानव के जीवन के क्रमिक विकास का अध्ययन करना भी हमारा उद्देश्य रहा है। मानव के अन्दर साहित्य, संगीत, कला, और सौन्दर्य के प्रति अनुराग कैसे पैदा हुआ, यह भी इस अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल के मानव एवं जीवाकृतियों का अध्ययन करना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है।

● ●

दूसरा अध्याय

भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला के संदर्भ में मिरजापुर

आरंभ में सृष्टि का क्या स्वरुप था और उसमें अपने देश, प्रदेश तथा इस जनपद की क्या स्थीत थी, यह बताना कठिन है, क्योंकि सारा जगत ही परिवर्तनशील है। हम समझते हैं कि तब मनुष्य इतनी जातियों, वर्गों, समुदायों में विभक्त न रहा होगा। सब एक जाति, धर्म, संप्रदाय के रहे होंगे और आपसी संघर्ष भी तब इतना न रहा होगा। प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय का मानव आपस में भाई चारे के सम्बन्ध से तो रहता ही था, वह जीव-जंतुओं तथा हिंस्र पशुओं के साथ भी मेल-मिलाप से रहता था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया, मनुष्य में दुष्प्रवृत्तियाँ आती गयीं और वह भयावह होता गया।

जहां तक मिरजापुर के संदर्भ में प्रागैतिहासिक काल के मानव के अध्ययन का सम्बन्ध है, वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। उस समय मिरजापुर का अपना पृथक कोई अस्तित्व न रहा होगा। यहाँ निवसित मानव तथा जीव-जन्तुओं का जीवन भी कुछ विचित्र ही रहा होगा। मिरजापुर के क्रमबद्ध इतिहास की कल्पना प्रागैतिहासिक काल से ही की जा सकती है क्योंकि प्रस्तुत सामग्री तत्कालीन मानव एवं उसके क्रमिक विकास पर भरपूर प्रकाश डालती है। मिरजापुर की प्रागैतिहासिक संस्कृति का अध्ययन तब तक अपूर्ण ही रह जायेगा जब तक मिरजापुर के ऐतिहासिक इतिवृत्त एवं पौराणिक महत्व पर प्रकाश नहीं डाला जायेगा। अतः हम यहाँ मिरजापुर के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं।

जनपद की स्थिति—मिरजापुर 25.09 अक्षांश उत्तर तथा 82.35-देशान्तर पूरब काशी और प्रयाग दो महातीर्थों के बीच अवस्थित है। मिरजापुर दक्षिणांचल तथा पश्चिमांचल की भौगोलिक स्थिति अनेक दृष्टि से संपूर्ण उत्तर प्रदेश में विलक्षण है। विन्ध्य पर्वत माला के उत्तरी भाग का यह प्रदेश विन्ध्य महा-कान्तार को आर-पार करने वाले यात्रा-पथ से जुड़े होने से अत्यन्त प्राचीन काल से आर्यावर्त के कोशल, काशी और मगध का, अनार्य आरण्यक आदिवासी क्षेत्र से संपर्क तथा संचरण का महत्वपूर्ण साधन था। इसीलिए यह अपनी बहुविध रंग-ढंग की विशेषताओं कीमंजूषा है। यह क्षेत्र, विशेष कर दक्षिण-पश्चिमांचल मिश्रण के

बावजूद अद्यावधि अपनी विविध संस्कृति की उस प्रदर्शनी के समान है जिसमें एक ओर बाहरियों की बस्तियाँ, औद्योगिक कालोनियां नये-नये प्रतिष्ठान, उनके संचालकों और कर्मचारियों को लेकर बढ़ने वाली सभ्यता उस दुर्गम पहाड़ी कान्तार को समेटती जा रही है, तो दूसरी ओर संस्कृति के संधि-स्थान की सिमटती सीमाओं में परंपरागत जीवन विधियाँ, पुरानी मंडियाँ और धार्मिक-सास्कृतिक रीतियाँ मिटती जा रही हैं। किन्तु कालान्तर में उन्हीं भौगोलिक और सांस्कृतिक स्थितियों के सान्निध्य में यह भाग आखेटजीवी वनवासी जातियों और कृषिजीवी ग्रामवासी जातियों की सम्मिलित संस्कृति रही है ।

आधुनिक सभ्यता की सर्वग्रासी धाराओं और वैज्ञानिक साधनों के विस्तार के कारण हुए परिवर्तनों ने मिरजापुर के इस पर्वतीय वनांचल की परंपरागत जीवन-विधि को प्रभावित ही नहीं किया है अपितु यहाँ की मूल संस्कृति को ही नष्ट कर दिया है। यहाँ के जंगल कटते जो रहे हैं, पहाड़ भी टूटते जा रहे हैं। अत: उनके साथ ही प्रागैतिहासिक कालीन चित्रित गुफायें भी नष्ट होती जा रही हैं। परिणामतः जंगलों और पहाड़ों में संरक्षित प्रागैतिहासिक काल की सास्कृतिक निधियाँ भी विनष्ट होती जा रही हैं।

यहाँ का आदिम साहित्य और कला-परंपरा का दायित्व ग्रहण कर पिछले खेवे के देशी-विदेशी विद्वानों एवं पुरातत्ववेत्ताओं ने पर्याप्त श्रम किया है। ऐसा करते समय वे यहाँ की पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री की विशुद्धता, उपयोगिता और प्रामाणिकता के प्रति आश्वस्त रहे हैं। तब भी, मिरजापुर जनपद की भौगोलिक विशेषताओं का अध्ययन गुहाचित्रों के अध्ययन के संदर्भ में अनिवार्य है। मिरजापुर की भौगोलिक संरचना के साथ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन शैली तथा नृवैज्ञानिक एवं मानव वैज्ञानिक वृत्ति पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा, क्योंकि गुहाचित्रों में इन समस्त तथ्यों पर भी यथास्थान प्रकाश पड़ता है।

मिरजापुर का भौगोलिक स्वरूप, सीमा-विस्तार और संरचना—मिरजापुर उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध पुराना, व्यापारिक नगर एवं विन्ध्याचल धाम के कारण तीर्थस्थान है। गंगा, सोन, कर्मनाशा, रेण, आदि नदियाँ इसके अनेक भाग को अभिसिंचित तथा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण आकर्षित करती हैं। पहले इनमें से दो नदियाँ सोन और गंगा यातायात का प्रमुख साधन भी थीं। इसके माध्यम से यहाँ का व्यापार कलकत्ता तक विस्तार पाये हुए था। यहीं कारण है कि यहाँ की संस्कृति सुदूर अंचलों तक अपना प्रभाव जमाये रही।

मिरजापुर अपने सांप्रतिक रूप में सन् 1830 में अस्तित्व में आया। यह पूर्वांचल में स्थित उत्तर प्रदेश का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण जनपद है जिसके उत्तर में जौनपुर तथा वाराणसी, पूरब में बिहार प्रदेश के शाहाबाद तथा पलामू, दक्षिण में मध्य प्रदेश और पश्चिम मे मध्य प्रदेश तथा जिला इलाहाबाद अवस्थित है। इस प्रकार मिरजापुर जनपद पहले से ही मध्य देश का हृदय-प्रदेश रहा है।

इस जनपद को प्राकृतिक दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है (1) उत्तर में गंगा-यमुना का मैदानी भाग, (2) दक्षिण मे सोनघाटी का पहाड़ी भाग, (3) पूरब में कर्मनाशा तथा जरगो का जंगली मैदानी भाग, (4) पश्चिम में बेलन तथा विन्ध्याचल का पठारी भाग। इसके अतिरिक्त करननौती (कर्णावती), खजुरी, लिधला तथा ओझला आदि नालों-झरनों का पानी गंगा में समाहित हो जाता है। दक्षिणांचल में तो शताधिक ऐसे झरने है जिनका पानी सोन और कर्मनाशा में जा मिलता है।

अधिकतर गुहाचित्र सोन और बेलन की घाटी तथा नालों-झरनों से सम्बन्धित पहाड़ियों और गुफाओं में बने हुए हैं। कुछ शैलाश्रय कर्मनाशा, जरगों, विढम और गंगा के किनारे भी मिले हैं। सोन की स्वर्णिम धारा मध्य प्रदेश के अमर कंटक की पहाड़ी से निर्गत हो कर जनपद के मध्य भाग को अभिसिंचित करती हुई डेहरी आन सोन के निकट गंगा में विलीन हो जाती है। इस प्रकार जनपद का अधिकांश विन्ध्य और कैमूर की गोद में ही विलसता है। यही कारण है कि इन गुफाओं में जो चित्र पाये गये हैं, वे एक प्रकार से यहाँ की तत्कालीन जीवन शैली पर प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष प्रकाश डालते हैं। गोचारण, नौका-विहार' आमोद-प्रमोद के दृश्य यहाँ की मूल संस्कृति को उजागर करते हैं।

दर्शनीय प्राकृतिक स्थल, जीव-जन्तु अथा वन-संपदा—मिरजापुर पर प्रकृति की असीम कृपा रही है। यही कारण है कि दिन-प्रति-दिन अनेक उद्योग-धंधे भी यहाँ पनपते जा रहे हैं। ओबरा, डाला, चुर्क, रेणुकूट, रिहन्द, रेणुसागर, बीना, कोटा, अनपरा, बीजपुर तथा सिंगरौली आदि औद्योगिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त प्राकृतिक दृष्यि से समृद्ध स्थलों में टाँडा फाल, विढम फाल, सीता कुण्ड, अपर खजुरी, लोअर खजुरी, सिद्धनाथ की दरी, लेखनियाँ की दरी, मुखा और मझुई की दरी, भेड़ा घाट, विजयगढ़, अगोरी, खोड़वा, केरवा आदि स्थल दर्शनीय हैं। इनमे से अधिकतर स्थानों पर प्रागैतिहासिक काल के चित्र मिलते हैं।

पहाड़ी स्थानों पर शताब्दियों पूर्व के बने दुर्ग विजयगढ़, अगोरी, कंडाकोट, सोढ़रीगढ़ शक्तेशगढ़, कन्तित, तथा चुनार आदि भी दर्शनीय हैं। इनमें से विजयगढ़ और

कंडाकोट में प्रागैतिहासिक काल के चित्र भी पाये गये हैं। यहाँ यात्री [illegible] आते रहते हैं। धार्मिक स्थलों में विन्ध्याचल की त्रिकोण यात्रा के सभी लगभग डेढ़ दो सौ मंदिर तथा तीर्थ, गोठानी और शिवद्वार के मंदिर तथा कलात्मक मूर्तियाँ, सोढ़रीगढ़ के भग्नावशेष, नलरजा, गोठानी, मंगेश्वरनाथ, कुड़ारी और ज्वालामुखी देवी आदि स्थानों पर लगने वाले मेलों-ठेलों का अपना अलग तेवर है। ये स्थल प्राय: जंगलों में या पहाड़ों पर अवस्थित हैं जहाँ सभी प्रकार के वृक्ष, जंगली जानवर कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी पाये जाते हैं। प्रागैतिहासिक काल के गुहाचित्रों में इन सभी के चित्र बने हुए हैं जिनको देखने से ऐसा लगता है कि गुफाओं में चित्रित सभी जानवर, कीड़े-मकोड़े, आरंभ से ही यहाँ रहते आ रहे हैं, यहाँ तक कि हाथी और गैंड़ा भी यहाँ पाये जाते रहे हैं।

मूल निवासी तथा उनके उद्योग-धंधे— जनपद के सभी भागों में अब चारों वर्ण तथा उनकी उप-जातियाँ निवास करती हैं, किन्तु मिरजापुर गजेटियर के अनुसार पहले यहाँ मुख्य रूप से ओझा, बैगा, कोल, मझवार, खरवार, बियार, बिन्द, गोंड़, धरकार, चेरो, पनिका, बैशवार, भूइयां, धांगर, भुतिया, अगरिया, पहाड़ी, कोरवा, पथरिया, धसिया, परहिया आदि जातियाँ निवास करती थीं।

जनरल कनिंघम के अनुसार यह क्षेत्र जेजामुक्ति साम्राज्य की सीमा के अन्तर्गत था[1] जिसके विषय में केशवचन्द्र मिश्र का विचार है कि—आर्यावर्त का यह भाग नि:सन्देह गहन वनों से आच्छादित होने के कारण शताब्दियों तक आर्यों के प्रभाव तथा आधिपत्य से मुक्त रहा। इसमें आदिवासी वन्य जातियों का ही एकान्त निवास रहा।[2] कृष्णावर्त की इन जातियों में कोल, शवर, और मुंड के अतिरिक्त आस्ट्रौलयड, मुंडा, संताल और द्रविड़ जातियाँ भी हैं। इनका सिर लंबा, कद नाटा, नाक चौड़ी, बाल घने और घुँघराले तथा वर्ण काला होता है। इन जातियों ने मूल रूप से विन्ध्य की उपत्यकाओं वाले इसी भाग को अपना निवास बनाया है।[3] आज भी यहां के निवासियों का खान-पान सामान्य है प्रमुख अनाजों

---

1. ए० एस० आई०, भाग 2, पृ०-413

2. इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग 2, पृ०-89-98, जे० ए० एस० बी०, 1879, भाग 1

3. चन्देल और उनका राजत्व काल, केशवचन्द्र मिश्र, ना० प्र० स०, काशी, पृ० 24

के अतिरिक्त लोग मांस तथा कन्द-मूल-फल का भी आहार करते हैं। वे नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं। इस दृष्टि से जब हम गुहाचित्रों पर विचार करने लगते हैं तो इन गुफाओं में अधिकतर नंगे मनुष्यों के चित्र ही पाते हैं। स्पष्टतः ये उस समय के मानव के चित्र हैं जब वह असभ्यावस्था में था और निर्वसन रहते हुए जंगलों में घूम कर जंगली जानवरों का शिकार किया करता था। वह लड़ाकू था, कुछ मित्र जानवरों को पाल भी लेता था। जैसे-जैसे वह सभ्य होता गया, गोचारण, खेती-बारी और उद्योग धंधे में भी रुचि लेने लगा। चित्रित गुफाओं में इसी प्रकार के चित्र पाये जाते हैं, इनके अध्ययन से मानव-सभ्यता के क्रमिक विकास का पट खुल जाता है।[1]

जलवायु, मिट्टी, कृषि तथा यातायात—यहाँ की जलवायु सम-शीतोष्ण है। वर्षा का औसत 100 से० मी० है। मिट्टी दोमट, मटियार तथा बलुई है। कृषि योग्य भूमि कम है तथा सिंचाई के साधनों का अभाव है। यह क्षेत्र सदा से पिछड़ा, गरीब तथा सामन्ती व्यवस्था का शिकार रहा है। उद्योग-धंधों के क्षेत्र में इधर काफी प्रगति हुई है। यातायात के साधनों में रेल, सड़क, जल तथा हवाई सभी का विकास हो गया है। यहाँ के गुहाचित्रों में नौका-विहार तथा गोचारण के दृश्य-चित्र मिले हैं, जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रागैतिहासिक काल का मानव नौका-यात्रा करता था। वह कभी-कभी हाथी-घोड़े पर सवार होकर भी भ्रमण करता था। कृषि के लिए बैल पालता था और बकरियाँ चराता था।[2]

क्षेत्रफल—मिरजापुर का क्षेत्रफल 12.72 लाख हेक्टेयर है जिसका लगभग दो-तिहाई भाग पहाड़ों और जंगलों से भरा है। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार आबादी 15.41 लाख थी और जनसंख्या का घनत्व 137 व्यक्ति प्रति वर्ग किलो मीटर था। अब यहाँ की जनसंख्या लगभग दूनी हो गई है।

यहाँ खेती योग्य भूमि (जिसमें भूमिधरी और सिरधरी भी शामिल है) 21 लाख 70 हजार 650 एकड़ है। ग्राम समाज की खेती योग्य कुल भूमि का क्षेत्रफल 85,946.46 एकड़ है। ग्राम सभा की 81,469.67 एकड़ भूमि, 59.740 व्यक्तियों में आवंवटित की गई है। 2,276.79 एकड़ भूमि का आंवटन बाकी है।

---

1. दे० लेखनियाँ संभाग के चित्र-फलक 8 तथा चनाइनमान संभाग के चित्र-फलक 13

2. दे० पंचमुखी संभाग के चित्र-फलक 10 तथा केरवाघाट संभाग के चित्र-फलक 19

प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति का अध्ययन जब हम आज के संदर्भ में करते हैं तो आकाश-पाताल का अन्तर पाते हैं। उस समय यहाँ शोषक और शोषित में कोई भेद-भाव न रहा होगा। गुहाचित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ का निवासी ही यहाँ का राजा था। प्रकृति का सारा साम्राज्य उसका अपना था। वह स्वतन्त्र विचरण करता था। जंगलों में घूम कर जानवरों का शिकार करना उसका मुख्य धंधा था। केरवाघाट, लेखनियाँ, पंचमुखी, मुखादरी सीताकुण्ड और विजयगढ़ की गुफाओं में गैंड़े, सूअर, हरिण, बारहसिंगा आदि के शिकार के दृश्य इस तथ्य के जीते-जागते प्रमाण है।[1]

कला तथा उसका स्वरूप—कला ही मनुष्य को पशु-श्रेणी से अलग करती है। कला ही मनुष्य की कुप्रवृत्तियों को परिमार्जित कर उसे सत्कर्म की प्रेरणा देती है। राग-विराग, सुख-दुःख, मानापमान, काम-मोक्ष की प्राप्ति में कला उसकी सहचरी है। कला जीवन को पूर्णता की ओर अग्रसर करती है। आनन्द की वस्तु होने के कारण वह जीवन को नीरस होने से बचा लेती है। यही कारण है कि मानव का इतिहास जितना प्राचीन है, कला का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है। उसका संबन्ध सृष्टि की आदि संरचना से है। कला स्वयं एक भाषा है जो मूक को वाणी देती और अपनी विशिष्ट विधियों से मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्ति देती है।

चित्रकला के दो मौलिक दृष्टिकोण हैं–एक पुरातत्वीय तथा दूसरा साहित्यिक। पुरातत्वीय दृष्टिकोण जनसामान्यपरक होता है, किन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण विशेष जनों के लिये विशेष ढंग का है। आरभ से लेकर अद्यावधि पर्यंत कला या सौंदर्य के प्रति अभिरुचि व्यक्ति में देखी गई है।

चित्रकला का इतिहास—आधुनिक विद्वानों ने चित्रकला के इतिहास को दो भागों में विभक्त किया है (1) ई० पू० (2) ई० उ०। पुनः ई० पू० को प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक दो कालों में विभाजित किया गया है। ई० पू० प्रागैतिहासिक काल के चित्रकला के निदर्शनों में निम्नलिखित चार कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

1—कैमूर पर्वत श्रेणियों की कतिपय गुफाओं में मृगया-चित्रण प्राप्त हुए हैं जिनका सविस्तार उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है।

---

1. दे० भल्दरिया संभाग का चित्र फं० 15, मुखादरी संभाग का चित्र फं० 14 तथा लेखनियाँ संभागका चित्र फं० 2

2—विन्ध्य पर्वत श्रृंखलाओं में जो खुदाइयाँ हुई हैं, उनमें जो प्रागैतिहासिक काल के अवशेष मिले हैं उनमें चित्रकला के ही निदर्शन निहित नहीं हैं, वरन् चित्र-रचना के उपकारी चित्रोपकरणों की सामग्री भी द्रष्टव्य है। [1]

3—रायगढ़ के सिंधनपुर में बिहार के चक्रधरपुर में और मिरजापुर की विविध गुफाओं में जो चित्र या पुरावशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें प्राचीन चित्र-कौशल की सुन्दर छटा देखने को मिलती है। यहाँ के अधिकतर चित्र मृगया, युद्ध, देवाराधन, गोचारण एवं आमोद-प्रमोद से संबंधित हैं, किन्तु उनसे यह प्रतीत होता है कि प्रकृति, वातावरण तथा पशुओं के चित्रण और धर्म संबंधी चित्रों के निदर्शन में उस समय के मानव को कितनी दक्षता प्राप्त थी। [2]

4—उत्तर प्रदेश के मिरजापुर जिले के गिरि-गह्वरों में जो चित्रण प्राप्त हुए हैं, उनका विन्यास बड़ा आकर्षक तथा उदीयमान है।

इसी प्रकार ई० पू० प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला का इतिहास जोगीमारा गुहा-कृतियों में द्रष्टव्य है। सुरगुजा के रायगढ़ पर्वत में इन गुफाओं के वे कला-निदर्शन अजन्ता की गुफाओं में स्थित चित्रकला की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में बने चित्र प्रागैतिहासिक काल के चित्रों की अनुकृति मात्र हैं। इन चित्रों में पशु जगत् का प्राधान्य तो है ही, चित्र कला की अतिरंजना का भी प्रथम दर्शन इन्हीं गुफाओं में हुआ है।

प्रागैतिहासिक कालीन मानव की कला प्रियता—मनुष्य अपने प्राकृतिक गुण के कारण प्रागैतिहासिक युग में भी कला से दूर न रह सका। उस समय कलाकार नियमों एवं वाह्य बन्धनों से मुक्त था। वह अपनी अनुभूतियों को सहज ढंग से प्रस्तुत करता था। अपने दैनिक जीवन में, जिनसे वह प्रभावित होता था, उन्हें उन्मुक्त भाव से चित्रित कर देता था। इसीलिए उस समय के चित्र उसकी जीवन-विधियों, क्रिया-कलापों, रहन-सहन और तौर-तरीकों का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

कलाकार चूंकि समाज का विशिष्ट प्राणी होता है, वह अपनी मौज-मस्ती में जीता है, स्वान्तः :सुखाय रचना करता है, इसलिए उसकी कृति श्रेष्ठ कृत बन जाती है।

---

1. धर्मयुग, 9 अप्रैल, तथा 16 अप्रैल 1972, डॉ० सांकलिया के लेख।

2. ऐसे ही चित्र विन्ध्य की गुफाओं में भी मिले हैं जिनका वर्णन इस पुस्तक में यथा-स्थान किया गया है।

वह कृति स्वान्तः सुखाय होते हुए भी सर्वहिताय हो जाती है । प्रागैतिहासिक काल के मानव की कला बुद्धि से प्रभावित न होने के कारण सहज, स्वाभाविक सर्जनात्मक और कल्याणपरक है । इसीलिए वह शास्वत भी है ।

उस समय के मानव के जीवन की झांकी इन चित्रों में मिलती है । उस समय का मानव अत्यन्त सादा जीवन बिताता था । उसके आस-पास पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, नदी-पहाड़, नाले-झरने, सूर्य-चन्द्रमा, तारे-नक्षत्र दिखलाई पड़ते थे । अतः उसने उन गुफाओं में उन सबको यथावत प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

ये चित्र कला की दृष्टि से चाहे उतने सुन्दर न हों, किन्तु भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही । ये एक युग की कहानी कहते हैं । इनमें तत्कालीन मानव का इतिहास-पुराण छिपा है । अतः इनके अध्ययन की महत्ता अपने आप सिद्ध हो जाती है ।

चित्रों के प्रतीक—पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि के चित्र प्रतीक चिह्न हैं । उस युग का मानव उनका प्रयोग अर्थ विशेष की अभिव्यक्ति के लिए किया करता था । प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्रों में ये प्रतीक चिह्न यत्र-तत्र देखे जाते हैं । पंचमुखी के चित्रों में इनकी अधिकता देखी गई । ऐसे मांगलिक चित्र एवं माडल आज भी दीपावली अथवा अन्य लोक पर्वों पर बनाये जाते हैं ।

इन प्रतीकों, माडलों अथवा डिजाइनों का दार्शनिक अर्थ भी है जिसका सीधा सम्बन्ध भारतीय प्राचीन संस्कृति से है । स्वस्तिक की चार भुजायें अभयदान देती हुई विष्णु की चार भुजाओं की प्रतीक हैं । बीच-बीच में सृष्टि रूपी बिन्दु हैं । इसकी खड़ी तथा आड़ी रेखाएँ स्त्री और पुरुष की अनंपृक्तता का प्रतीक हैं जिनसे सृष्टि का चक्र चलता है । स्वस्तिक की चार रेखाओं की तुलना हमारे यहाँ चार आश्रमों, चार पुरुषार्थों चार वर्णों और चारों वेदों से की गई है । इसी प्रकार दीपक ज्ञान का प्रतीक है । चक्र ईश्वरीय शक्ति का प्रतीक है । चौक शुभ और सौन्दर्य का प्रतीक है, पुष्प सौन्दर्य, कोमलता और हर्षोल्लास का प्रतीक हैं । तीर तथा 45 अंश का कोण बनाती रेखाएं गति और त्रिकाल की प्रतीक है । गुणित का निशान युद्ध का, लतायें या गमले विकास और समृद्धि का, खड़ी पाई शांन्ति का, घन स्थिरता का तथा सर्पाकृतियाँ तीक्ष्णता और विद्युत-ज्योति की प्रतीक मानी गयी हैं ।

भारतीय परंपरा में पशु-पूजा का बड़ा महत्व है । दीप-पर्व पर गोवर्द्धन की पूजा-प्रथा प्राचीन है । इसी प्रकार कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन घर के दरवाजे के सामने

गोवर्द्धन का चित्र बनाया जाता है। पहले गायों के सिक्के चलते थे। इन तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि पशुओं का प्रयोग प्रतीक अर्थ में आरंभ से ही होता आ रहा है। प्रागैतिहासिक कालीन मानव ने इसीलिए पशुओं के चित्र अधिक बनाये हैं। उनके कुछ दार्शनिक अर्थ हैं। प्रागैतिहासिक काल का मानव भी गायों की अदला-बदली द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहा होगा। आज भी लक्ष्मी के दोनों ओर दो हाथी जल से उनका अभिषेक करते हुए दर्शाये जाते हैं। हाथी बादलों के प्रतीक रहे हैं। बादल रूपी हाथी समुद्र से जल लेकर पुनः धरती को लौटते हैं। हाथी शुभ-दर्शन हैं और लड़ाकू भी। संभव है, प्रागैतिहासिक कालीन शिकारी मानव ने इसीलिए हाथी को अपने जीवन का एक आवश्यक अंग माना हो। इन शैलाश्रित गुहाचित्रों में हाथी के चित्रों की अधिकता है।[1] इसी प्रकार घोड़ा, बैल, भैंस, बाघ, गैंडा, ऊँट, सूअर, चीता, हरिण, बारहसिंगा, बकरी, भालू आदि जानवरों के चित्र भी बनाये गये हैं।

गुहाचित्रों में स्वर तथा लयात्मकता—गुहाचित्रों में एक प्रकार के स्वर और लय की प्रधानता है। इन प्रतीकों के माध्यम से आदिमानव ने अपनी बात, अपनी जीवन-विधि, संगीत, एवं कलाप्रियता का परिचय दिया है। इससे उसके कला और साहित्य के प्रति अनुराग का अच्छा परिचय मिल जाता है। चित्र या प्रतीक चिह्न इस बात के साक्षी हैं कि उस युग का मानव भी स्नेह, दया, करुणा, प्रेम, उत्साह, हर्ष, शोक, सुख-दुःख आदि की अनुभूति करता था और संवेदनशीलता के कारण उसे स्थायी धरोहर के रूप में संरक्षित करने के लिए गुफाओं में उन्हें अंकित कर दिया करता था। वे चित्र ही उसके संगीत-प्रेम के भी परिचायक हैं। हवा की झनझनाहट, बिजली की तड़प, बादलों की गरज, पक्षियों की चहक और जानवरों की बोली का वह अनुकरण करता रहा होगा। अनुकरण से हम सीखते हैं। उस समय का मानव भी उससे सीखता और फिर चित्रों के माध्यम से अपने भावों-विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता रहा होगा। चित्रों का तरतीबवार संयोजन उसकी संपादन कला के भी जीते जागते प्रमाण और उसके व्यवस्थित जीवन के प्रतीक हैं। गुहाचित्रों में चित्र-बिंब स्वयं वस्तु या व्यक्ति के स्थानापन्न हैं। यही कारण है कि यह रहस्यात्मक, जादुई शक्ति से संपन्न भी हैं। ये बिंब केवल बिंब न रह कर प्रतीक बन गये हैं।

नर-नारी के चित्र--इन रेखाचित्रों में चित्रित नारी और पुरुष की देहयष्टियों में अपूर्व छन्द भर दिया गया है। पुरुष और नारी के उन अंगों को रेखाओं द्वारा उभारने की कोशिश की गई है जो एक की सर्जनशीलता और दूसरे की पोषणशीलता के

1—दे० लेखनियाँ (अहरौरा) का चित्र फ० 3

प्रतीक हैं। पुरुष आकृतियाँ आयाम के लिहाज से विराट् नारी के आगे बौनी अंकित की गई हैं। युद्धोन्मत्त पुरुष कठोरता का प्रतीक है तो सजी-सँवरी, नाचती-थिरकती नारी कोमलता की। नारी-विहीन पुरुष की अपूर्णता को उसकी बौनी आकृति से दिखाने का प्रयास है। पुरुष-प्रकृति के संयोग से सृष्टि की रचना का संकेत तो मिलता ही है, सृष्टि-संचालन में भी इन दोनों को गाड़ी के दो पहियों के समान प्रदर्शित किया गया है।[1] तथापि नर-नारी सम्भोग की मुद्राएँ कदाचित् ही हैं। हाँ, पशु-सम्भोग की मुद्राएँ हैं। स्त्री-पुरुष के इन इहलौकिक तथा पारलौकिक सम्बन्धों के प्रतिपादक प्रत्येक चित्र रेखाओं के सवेपन को प्रमाणित करते हैं। उनका संयोजन और संपादन भी बड़े विधि-विधान से और सार्थक ढंग से किया गया है। इन चित्रों की एक मौन भाषा भी है जो कहीं कथात्मक और कहीं काव्यात्मक हो गई है। वह हमारे अन्तर्मन को छू लेती है।

नारी की शृङ्गार-प्रियता--सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मानव की सहज प्रवृत्ति है। प्रागैतिहासिक काल का मानव भी सौन्दर्यप्रिय था। प्रकृति उसकी आदि सहचरी थी। अतः प्रकृति प्रदत्त वस्तुएँ ही सौन्दर्य की प्रतीक थीं। वे शृंगार प्रसाधन का उपादान बनती रही हैं। पत्तों या छालों से गुप्तांगों को ढकने की परंपरा आज भी जीवित है। पुष्प भी जहाँ एक ओर गुप्तांगों को ढकने के साधन रहे हैं, वहीं दूसरी ओर शृंगार-प्रसाधन के भी माध्यम रहे हैं। अनेक ऐसे चित्र भी प्राप्त हुए हैं जो काम स्वातंत्र्य तथा रति-क्रीड़ा से संबन्धित हैं।[2]

उस समय की महिलायें पशु-खाल बल्कल पहनती थीं और वे सुन्दर दीखें, इसलिए अपनी उन बल्कल की लंगोटियों में नन्हीं-नन्हीं गोलियाँ भी आभरण के रूप में गूँथ लेती थीं। उस समय धोंधी पहनने की भी प्रथा थी। अनेक स्त्रियां अपने-अपने कटि-प्रदेश को बल्कल आदि से सजा कर नाचती या उल्लास मनाती थीं।[3] तात्पर्य यह कि मुक्त रतिक्रीड़ा के साथ-साथ लज्जा या मर्यादा का आवरण उस समय भी था।

चित्र-शैली—डॉ० जगदीश गुप्त ने शिलाचित्रों के व्यापक सर्वेक्षण के उपरान्त निम्नलिखित पांच चित्रण शैलियों को प्राथमिक महत्व से युक्त बतलाया है।[4]

---

1. दे० पंचमुखी के चित्र तथा चनाइनमान का चित्र फ० 5
2. दे० चनाइनमान, पश्चिम का चित्र फ० 7
3. वही, चित्र फं० 7 तथा चनाइनमान पूरब के अप्सरा का चित्र फ० 4
4. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला, डॉ० जगदीश गुप्त, पृ०-574

1--पूरक शैली, (2) अर्द्ध-पूरक शैली, (3) रेखा शैली, (4) अलंकृत शैली, (5) क्षेपांकन शैली।

इनके चित्रणों से यह जो यौगिक शैली रूप सामने आते हैं, एकाकी अंकनों की अपेक्षा समूहांकनों में विशेष रूप से लक्षित होते हैं—

1—पूरक और अर्द्ध-पूरक शैली, (2) पूरक और अलंकृत शैली, (3) अर्द्ध पूरक और अलंकृत शैली, (4) पूरक शैली और रेखा-शैली।

शिला-चित्रों के संदर्भ में जो अंकन विधियाँ महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रतीत होती हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) एकाकी अंकन, (2) आबद्ध अंकन, (3) समूहांकन, (4) संश्लेषणात्मक अंकन (5) विश्लेषणात्मक अंकन (6) रूपानुसारी अंकन।

इनके तीन स्वरूप हैं—

1--यथार्थ पर आधारित, (2) काल्पनिक, (3) पारदर्शी
इन चित्रों को इस प्रकार भी वर्गीकृत किया जा सकता है—

1--पूरक--(क) संपूरित, (ख) विषमपूरित, (ग) ज्यामितिक, (घ) कोणीय, (ङ) वर्तुल, (च) आरोहावरोहयुक्त।

2--अर्द्धपूरक—(क अलंकृत, (ख) अनलंकृत।

3--रेखा शैली—(क) वाह्य, (ख) सामान्य, (ग) इकहरी, (घ) दोहरी, (ङ) योजनाबद्ध, (च) स्वच्छन्द, (छ) सूक्ष्म, (ज) स्थूल।

4--अलंकृत—(क) ज्यामितिक, (ख) सामान्य, (ग) कोणीय, (घ) योजनाबद्ध।

5--क्षेपांकन—(क) सांझीआश्रित (ख) सामान्य,

इस प्रकार मिरजापुर में जितनी चित्रित गुफायें मिली हैं, उनमें विविध प्रकार की शैलियों के चित्र प्राप्त हुए हैं। अधिकतर गुफाओं के चित्र पूरित या अर्द्ध-पूरित शैली में चित्रित हैं। नर-नारियों, जीवाकृतियों, आखेट, युद्ध आदि से सम्बन्धित चित्र भारी संख्या में मिरजापुर की गुफाओं में पाये गये हैं। चनाइनमान और केरवाघाट की गुफाओं में बने चित्रों को देखने से प्रतीत होता है कि आरंभ में जो चित्र बनाये गये थे कालांतर में जब वे मिटने लगे तो उन पर दूसरे प्रकार के चित्र पुनः बना दिये गये। ऐसे दुबारा खचित चित्र प्रायः कत्थई रंग के बने हैं। इन चित्रों को दोहरे या पुनर्लेखन शैली की संज्ञा दी जा सकती है।

तीसरा अध्याय

मिरजापुर के गुहाचित्र : विश्लेषणात्मक अध्ययन

जेजाक मुक्ति की पर्वत श्रेणियों को फ्रैंकलिन ने बुन्देलखंड के अपने भू-वर्णन में तीन भागों में बाटा हैं[1] जिसमें उत्तर-पूरब में स्थित सीमावर्ती कम ऊँची श्रेणियों को उन्होंने 'विन्ध्याचल की पहाड़ियाँ' नाम दिया है। यह श्रेणी सिन्धु नदी के तट पर स्थित केशवगढ़ से आरंभ होकर कालञ्जर और विन्ध्यवासिनी देवी (मिरजापुर) को समेटती हुई राजमहल से आगे गंगानुवर्ती बन कर बढ़ जाती है। इसकी ऊँचाई 2000 फीट से अधिक नहीं है। यह जंगलों से आच्छादित, नदी-नालों, झरनों से मनोरम है। दूसरी श्रेणी पठार के दक्षिण में है, जिसे 'पन्ना की पहाड़ियाँ कहा जाता है। तीसरी दक्षिण की पहाड़ी है जो प्रमुख रूप से विन्ध्य की मौलिक श्रेणियाँ हैं। इनके स्थानीय नाम भिन्न-भिन्न हैं, जिनमें महत्वपूर्ण नाम केवल कैमूर है। पन्ना पर्वत श्रेगियाँ जहाँ समाप्त होती हैं, उसके सन्निकट ही कैमूर-श्रेणी आरंभ हो जाती है।[2] इन सभी क्षेत्रों में प्रागैतिहासिक काल के गुहाचित्र पाये जाते हैं। हम यहाँ मिरजापुर की विभिन्न चित्रित शैलाश्रित गुफाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन, जनपद को विभिन्न संभागों में बाँट कर करेंगे और केन्द्र राबर्ट्सगंज को मानेंगे क्योंकि राबर्ट्सगंज से प्रायः सभी स्थानों को आसानीं से देखा जा सकता है।

पंचमुखी संभाग

पंचमुखी सुपरिचित स्थान है। प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान काफी सुन्दर और सुखद है। यहां से दीखते खोड़वा पहाड़, विजयगढ़ दुर्ग, सोन की सुविस्तृत घाटी और कंडाकोट की पहाड़ी के स्थल सचमुच हमें एक नये संसार में ला खड़ा कर देते हैं। यह स्थान राबर्ट्सगंज से ठीक सामने दक्षिण लगभग 5 किमी० की दूरी पर स्थित है। पहाड़ी के पास रौंप गांव बसा है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने इन चित्रों का उल्लेख रौंप के नाम से ही किया है। यहाँ पहुंचना सुगम है। चुर्क जानेवाली सड़क से

1. गजेटियर उत्तर प्रदेश, सीमा प्रान्त भाग-1,पृष्ट-54।
2. चन्देल और उनका राजत्व काल, केशवचन्द्र मिश्र, पृष्ट-8-9।

एक किलो मीटर दक्षिण पंचमुखी की पहाड़ी दूर से ही हमें आकृष्ट कर लेती है। यहाँ भगवान शंकर की पंचमुखी प्रतिमा न जाने कब से प्रतिष्ठित है। यहीं भग्नावशेष शिव-मंदिर है। विष्णु तथा दुर्गा आदि की प्रतिमायें खण्डित रूप में प्राप्त हैं। मंदिर से सटकर पूरब की ओर एक टीला मिला है जिस पर चौड़े आकार की सादी ईंटें मिलती हैं। अनुमान है कि यहाँ बौद्ध काल में बौद्ध-विहार बना रहा होगा। पंचमुखी टीले से दक्षिण की ओर ठीक नीचे एक गुफा है जिसमें एक बाबा जी रहा करते थे। इस शैलाश्रय में गैंडा, सूअर, बैल और कुछ आदमियों के चित्र बने हुए हैं। इनमें से कुछ चित्र धुँयें के कारण विनष्ट हो चुके हैं। इस गुफा से लगभग 200 मीटर पूरब, चित्रित गुफायें हैं। इन गुफाओं में गैंडा, ऊँट, बकरी, कुत्ता, सूअर और हरिण आदि के शिकार-सम्बन्धी चित्र पाये गये हैं। इस गुफा से लगभग 25 मी० पश्चिम एक दूसरी, लगभग 50 मी० लंबी और 10 मी० चौड़ी गुफा बनी है जिसमें अंग्रेजी के 'ए', 'डी', आदि विभिन्न आकार की अक्षर लिपियाँ बनी हुई हैं।[1] यहाँ गोलाकार, त्रिकोणाकार, चतुर्भुजाकार, नालाकार, षट्कोणाकार, सर्पाकार चित्र बने हुए हैं। इस गुफा से लगभग 20 मी० पश्चिम, एक शिला-खंड पर नर-नारियों के चित्र भी निर्मित हैं। वे आमोद-प्रमोद की मुद्रा में या पशुओं को चराते हुए दिखाये गये हैं। यहाँ से लगभग 500 मी० पश्चिम उत्तर के कोण पर एक शिलाखंड है जिसके ऊपर लंबे-लंबे अक्षर बने हुए हैं।[2] यहाँ के प्रायः सभी चित्र लाल या कत्थई रंग के बने हैं। दो-चार सफेद भी हैं। इनमें से अधिकतर पूरित, अर्द्ध-पूरित अथवा रेखांकन शैली में हैं। ये सभी चटखीले हैं। निःसंदेह कला की दृष्टि से इन चित्रों का बड़ा महत्व है। सभी चित्र भावप्रधान, कथात्मक, कलात्मक, तथा काव्यात्मक भी हैं और प्रागैतिहासिक मानव की ललित वृत्तियों का स्पष्ट निदर्शन करते हैं।

पंचमुखी संभाग में जो अन्य चित्र प्राप्त हुए हैं उनमें कुछ स्वस्तिक तथा दीपक के आकार के हैं। दो चार चित्र देवी-देवताओं के भी देखे गये हैं। कुछ स्थानों पर हथेली और उंगलियों के छापे भी बने मिले हैं। गुणित और धन के आकार के चित्र अन्यत्र प्रायः नहीं पाये जाते। तोता, ऊँट, हाथी, घोड़ा, बैल, शेर, मोर, साँप, बिच्छू के चित्र भी यहाँ मिले हैं। यहाँ दो ऐसे चित्र मिले हैं, जिनको सूर्य, हनुमान, लक्ष्मी गणेश कहा जाता है और वे बड़े कलात्मक हैं। काकवर्न महोदय को गैंडे का चित्र

---

1. दे० पंचमुखी संभाग के चित्र

2. वही, चित्र जिसे कुछ विद्वानों ने शंख लिपि कहा है।

यहाँ पहली बार मिला था।[1] पंचमुखी मन्दिर के पास कुछ पुराने सिक्के भी मिले थे।

रौंप या पंचमुखी के चित्र अन्य स्थानों के चित्रों से अनेक संदर्भों में भिन्न हैं। सूर्य, पृथ्वी, हनुमान लक्ष्मी-गणेश की आकृतियाँ तथा अक्षर लिपियाँ, संकेत लिपियाँ, स्वस्तिक प्रतीक अन्यत्र नहीं मिलते। इस प्रकार पंचमुखी के चित्रों के अध्ययन का महत्व अपने आप सिद्ध है।

चनाइनमान संभाग

चनाइनमान के गुहाचित्र—पंचमुखी के ऊपर वर्णित गुहाचित्रों के क्रम में ही पश्चिम की ओर चनाइनमान की गुफा है। पर्वत-श्रेणी भी वही है। यहाँ चनाइनमान की दो गुफाएँ हैं—एक पंचमुखी से सटी हुई और दूसरी पंचमुखी से लगभग दो किलोमीटर पश्चिम। इसीलिए मैंने पहली को चनाइनमान पूरब और दूसरी को चनाइनमान पश्चिम के नाम से अभिहित किया है। राबर्ट्सगंज से चोपन को जाने वाली सड़क पर छपका गाँव के दोनों बाजू पर चनाइनमान की दोनों गुफाएँ स्थित हैं।

चनाइनमान पूरब—यह गुफा भी दो भागों में विभक्त है, एक उत्तर की, जिसकी शिला की छतों पर अल्पना डिजाइनें जैसे—पान-पत्ता, षट्कोण, अष्टकोण की आकृतियाँ बनी हुई हैं, और दूसरी दक्षिण की ओर है जिसकी दीवारों पर अथवा पड़ी शिला पर युद्ध, आखेट, नंगे मानव, व्यूहरचना, शस्त्रास्त्र, तोता, गरुड़, कुत्ता, बकरी, चक्रधारी, अष्टभुजी देवी, अप्सरा आदि के चित्र बने हुए हैं।[2] यहाँ बने रक्त-रंजित हथेली वन्दनवार और चक्र, वृक्ष, आदमी पर शेर का आक्रमण और गेंडा तथा शेर की कुश्ती के चित्र बड़े महत्व के हैं। यहाँ और पंचमुखी के चित्रों में काफी समानता है, किन्तु अल्पना डिजाइनें तो प्रायः यहीं मिलती हैं। अप्सरा का चित्र कदाचित नहीं मिलता है। व्यूह-रचना वाली आकृति से लगता है कि उस समय भी युद्ध के लिए कतारबद्ध सेना खड़ी होती थी। इस तरह की डिजाइन लिखनमाड़ा (सहडोल) में भी मिली है।

इस स्थान से देखने पर पूरब में पंचमुखी की पहाड़ी, पश्चिम में चनाइनमान की पहाड़ी, उत्तर में एक साधु की छावनी और दक्षिण में सोनघाटी के दृश्य बड़े आकर्षक और मनोरम लगते हैं।

1. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला, डॉ० जगदीश गुप्त, पृष्ठ 65

2. दे० चनाइनमान का चित्र फ० 11

चनाइनमान पश्चिम—इस क्षेत्र में लोकनायक वीर लोरिक की गाथाएं बड़चा व से गायी जाती हैं। चनवाँ नामक: उसकी प्रेमिका थी। लोगों का कहना है कि इस स्थान का नामकरण उसी के नाम पर हुआ है। किन्तु लोरिक की प्रेमिका चनवाँ का इस क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है।[1] इस स्थान को 'चनाइन देवी का धाम' भी कहा जाता है। लोकश्रुति में 'नोना चमाइन' का नाम है। संभव हैं, वही बिगड़ कर 'चनवाँ चनाइन' हो गया हो। राबर्ट्सगंज से दक्षिण लगभग 5 किलो मीटर दूर मारकुण्डीघाट से पूरब लोरिक की वीरता का प्रतीक शिला-खण्ड स्थित है। छपका पावर हाउस से लगभग एक किलोमीटर दूर स्थित यह गुफा लगभग 100 मीटर ऊँची, 10 मीटर लम्बी तथा लगभग इतनी ही चौड़ी त्रिकोणाकार है।[2] इसकी छत और दीवारों पर गेरू और घाउ रंग के अनेक चित्र बने हैं। ये चित्र निःसन्देह हजारों वर्ष पुराने हैं। उस समय आदिमानव और उसका परिवार यहाँ रहता रहा होगा, समीप में बहते नाले का पानी पीता रहा होगा, किन्तु उन दिनों तो यहाँ जंगल के सिवा और कुछ भी न रहा होगा। शेर, चीतें, भालू आदि जानवर यहीं रहते रहे होंगे। खाने के लिए भी जंगली फल-फूल और मांस के अलावा कुछ न रहा होगा। उसी युग में तत्कालीन मानव द्वारा बनाये गये ये सजीव चित्र आज तक कैसे सुरक्षित बचे हैं यह भी आश्चर्य का विषय है। गाँव के लोग उसे 'कोहबर' क्यों कहते हैं, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। कोहबर पतिगृह के उस स्थान विशेष को कहते हैं, जहाँ विवाहोपरान्त नव-वधू अपने पति के साथ घर में प्रवेश करती है। गाँव की स्त्रियाँ, बालायें, अक्षत आदि लेकर उसे चूमती हैं। वहाँ दीवार पर हलदी आदि से हाथी, घोड़ा, पालकी, कहार, देवी-देवता आदि के चित्र बनाये गये होते हैं। चनाइन-मान में भी ऐसे ही चित्र बने हैं। यहाँ चित्रों के ऊपर भी चित्र बनाये गये हैं। यहाँ के प्रमुख चित्रों में हरिण, हाथी, बैल, बकरी आदि हैं। बारहसिंगा के छह-सात चित्र, सूअर के दो चित्र बने हैं। एक और चित्र बड़ी सींगों वाले जानवर का बना है, कुत्ता, गाय के चित्र भी बने हुए हैं। एक पारिवारिक चित्र है जिसमें पति-पत्नी को वार्ता करते दिखलाया गया है।[3] यहीं एक पाल वाली बड़ी नौका का चित्र भी बना है जिसमें नर-नारी, आमोद-प्रमोद की मुद्रा में चित्रित हैं।[4] इसी प्रकार गोचारण

---

1. दे० लोरिकायन: एक अध्ययन, डॉ० अर्जुनदास केसरी का शोध-प्रबन्ध पृष्ठ—55-65

2. दे० सोन के पानी का रंग, देवकुमार मिश्र, पृष्ठ—234

3. दे० चनाइमान संभाग के चित्र फ० 11, 18

4. पाल वाली नाव गोरा पहाड़ (सीधी) में भी मिली है—दे० सोन के पानी का रंग देवकुमार मिश्र, पृष्ठ 234

का दृश्य, वाद्य-यन्त्रों के साथ नृत्य करती हुई स्त्रियों और पुरुषों के चित्र, आलिंगन बद्ध मुद्रा में स्त्री-पुरुष के चित्र, एक अप्सरा का चित्र और मगर, घड़ियाल, गैंडा आदि जानवरों के चित्र भी अंकित हैं। यहाँ बने कुल चित्रों की संख्या 100 से अधिक है। इसी गुफा की तरह कुछ माँची (सीत्री) में तथा लिखनियां (राजपुर) में भी चित्र मिले है।[1]

इस गुफा में युद्ध के चित्र भी मिले हैं। एक चित्र सिर कटे आदमी का है। इसी प्रकार दो योद्धाओं को लड़ने की मुद्रा में दिखाया गया है।[2] एक योद्धा को दो योद्धाओं द्वारा उठा कर किसी स्थान पर ले जाते हुए भी दिखाया गया है।[3]

यहाँ एक महिष के मत्थे का चित्र और उसके साथ महिष के चमड़े को सुखाये जाने का दृश्य-चित्र भी मिला है।[4] इसी गुफा में पंचमुखी गुफा की तरह एक सुसज्जित राजा का चित्र भी है। उसी के साथ एक कुत्ता, एक नंगा मानव और एक गरुड़ का चित्र भी बना है।[5] एक और चित्र किसी जानवर का है, जिसके साथ लगता है, जानवर का निकाला गया चमड़ा सूखने के लिए डाला गया है। इस प्रकार इन चित्रों को देखने से जो कुछ विशेष तथ्य सामने आते हैं, इस प्रकार हैं–

1--उस समय का आदमी युयुत्सु प्रकृति का था। मार-काट, युद्ध उसके जीवन के अनिवार्य अंग बन गये थे, चाहे वह अस्तित्व रक्षा के लिए ही क्यों न होते हों।

2--युद्ध सैन्य शक्ति से होता था और सेनाएँ आमने-सामने होकर लड़ती थीं।

3--योद्धा प्रायः हाथी पर सवार होकर युद्ध करते थे।

4--सेनापति, राजा तथा अन्य कर्मचारी भी रहते थे।

---

1. दे० सोन के पानी का रंग, देवकुमार मिश्र, पृष्ठ–235

2. दे० चित्र फ० 11,

3. दे० चित्र फ० 23

4. वही चित्र फ० 11

5. दे० चित्र फ० 14

कण्डाकोट के गुहा-चित्र—चनाइनमान से लगभग 6 किलो मीटर दक्षिण-पश्चिम, राबर्ट्सगंज से दक्षिण-पश्चिम कोण पर लगभग 12 किलो मीटर दूर कण्डाकोट की ऊँची पहाड़ी है। यह पहाड़ी सोन से कुछ ही दूरी पर स्थित है। पहले कभी यह दुर्ग के रूप में रही होगी, क्योंकि दुर्ग के प्राचीर आज भी ध्वंसावशेष रूप में विद्यमान हैं। पहाड़ी के ऊपर त्रिनेत्र भगवान की प्रतिमा एक मंदिर में प्रतिष्ठित है जिन्हें कंडेश्वर महादेव भी कहते हैं। शिवरात्रि और वसन्त पंचमी पर यहां मेला लगता है। इस पहाड़ी के चारों ओर खाईं है तथा पूरा भाग जंगलों से घिरा हुआ है। यहाँ चनाइनमान तथा राजपुर दोनों स्थानों से जीप, हाथी, घोड़ा, अथवा खच्चर से जाया जा सकता है। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए पश्चिम से रास्ता बना है। ऊपर जाने पर गर्मी के दिनों में पानी नहीं मिलता।

इस पहाड़ी के ऊपर, पूरब और दक्षिण की ओर गुफाएँ हैं। इन गुफाओं के शैल-खण्डों पर गेरू और धाऊ से चित्र बने हैं जिनका रंग गाढ़ा लाल अथवा सफेद है। यह स्थान बहुत अटपटे है जहां पाँवों के फिसलने का भय बना रहता है। ऊपर पहुँच जाने पर गुफा के अन्दर बैठने की जगह मिल जाती है। यहाँ से सोनघाटी का दृश्य मन को आकृष्ट कर लेता है। यहां खतरनाक जंगली जानवरों का भी भय रहता है। अतः सुविधानुसार अपने साथ बन्दूक आदि लेकर जाना चाहिए।

कण्डाकोट की गुफाओं में अधिकतर चित्र जानवरों के बने हैं। मंदिर से दक्षिण-पूरब की ओर जो गुफा है उसमें पंक्तिबद्ध हाथियों के चित्र बने हैं। हर हाथी पर एक आदमी सवार है। हाथी और सवार दोनों युद्ध की मुद्रा में चित्रित हैं। उनके हाथों में अस्त्र-शस्त्र भी हैं। ऐसे ही चित्र छातुग्राम, सीताकुण्ड तथा लेखनियाँ (अहरौरा) में भी उपलब्ध हैं।[1] कुछ चित्र आदमियों के हैं। एक चित्र कुत्ते का है। कहीं भागते हुए हरिण का कोई शिकारी पीछा कर रहा है तो कहीं बड़े-बड़े बालों वाला नर्तक गले में ढोल बाँध कर बजा रहा है।[2] नर्तक तथा वादक उसका साथ दे रहे हैं। आदमी का कटा हुआ एक हाथ भी दिखाया गया है जिससे खून की बूँदें चू रही हैं। बकरियों के भी कुछ चित्र बने हैं। धनुष-वाण लिये दो व्यक्ति हाथी पर सवार दिखाये गये हैं। हाथी के पीछे दो अन्य आदमी हैं, फिर उनके सामने एक दूसरा हाथी है। उस हाथी के ऊपर तीन व्यक्ति नृत्य की मुद्रा में दिखाये गये हैं। वे कमर पर हाथ रखे हैं।

---

1. दे० सीताकुण्ड, अहरौरा संभाग के चित्रों का विवरण तथा चित्र फलक 6, 17.

2. दे० सीताकुण्ड, लेखनियाँ संभाग के चित्रों का विवरण चित्र फ० 12.

इसके बाद के कुछ चित्र मिट गये हैं, बचे हुए चित्र भी रख-रखाव के अभाव के कारण मिटते जा रहे हैं।

इस गुफा से उत्तर की ओर मंदिर के सामने एक अन्य चित्रित गुफा है जिसमें हस्ति-आरोहियों के चित्र बने हैं। एक चित्र जंगली सूअर का बना है।

कण्डाकोट के नीचे चिरुहुली-करमडाँड ग्राम के पास मंदिर से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग 300 मीटर दूर एक दूसरा शैलाश्रय मिला है जिसमें गाढ़े लाल तथा कत्थई रंग के चित्र बने हैं जिनमें मुख्य हैं—योद्धा, हाथी का शिकार, हरिण, हाथी, हस्ति-आरोही, कटे हुए सिर वाला हरिण, धनुर्धर, वाण-संधान करते शिकारी, वाण चलाते हुए तीन अन्य शिकारी, हाथी, सीढ़ी, त्रिकोणीय चिह्न, फिर चार आखेटक। ये सभी चित्र पंक्तिबद्ध और क्रमिक रूप से चित्रित हैं।

इस स्थान से 200 मीटर दूर बायें हाथ की ओर एक अन्य शैलाश्रय में हस्ति-आरोही शिकारी का चित्र बना है जिसकी कमर में तलवार बंधी है। इसी क्रम में तीन और शिकारी हाथी पर सवार दिखाये गये हैं, पास में शिकारी कुत्ता, हाथी, बारहसिंगा आदि के चित्र भी बने हैं। ये सभी चित्र बड़े हैं। कुछ तो डेढ़ फीट लम्बे तक हैं।

यहाँ के अधिकांश चित्र पूरित शैली में बने हैं। इस पहाड़ी में और भी चित्रित गुफाओं के मिलने की संभावना है। इन गुफाओं को देखकर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं—

1—ये उस समय के चित्र हैं, जब मानव ने शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करना आरंभ कर दिया था। शिकार और युद्ध की कला का ज्ञान भी उसे था। युद्ध प्रायः हाथियों पर चढ़ कर किये जाते थे।

2—उस समय का मानव पशु-धन अथवा जमीन के लिए युद्ध करता था तथा पेट पालने के लिए शिकार करता था।

3—लोग आखेट जीवी थे तथा आखेट के समय कुत्ते उनकी सहायता करते थे। नुकीले पत्थर तथा धनुष-वाण से शिकार किये जाते थे।

4—मनुष्य नाचने-गाने का भी शौक करता था। तुरही तथा ढोल उस समय के प्रमुख वाद्य-यन्त्र थे। नृत्य का आयोजन भी यथा समय किया जाता था।

5—दूध देने वाले जानवर पाले जाते थे, जिनमें बकरी और गाय मुख्य हैं। साभर और शेर के शिकार भी धनुष-वाण से किये जाते थे। पशुओं को घेर कर मारा जाता था।

लेखनियाँ के गुहाचित्र—कण्डाकोट से लगभग 4 किलोमीटर पश्चिम, लेखनियाँ की गुफा है। यह राबर्ट्सगंज से लगभग 12 किलोमीटर दूर पश्चिम और दक्षिण दिशा में पड़ती है। यहाँ जाने के लिए राबर्ट्सगंज से शाहगंज, शाहगंज से राजपुर और राजपुर से ट्रैक्टर या जीप द्वारा लेखनियाँ पहुँचा जा सकता है। मार्ग में एक पहाड़ी नदी पड़ती है जिसे पार करके लगभग 4 किलोमीटर आगे बढ़ने पर लेखनियाँ नामक स्थान पड़ता है। यह कभी शिकारगाह था और राजपुर के राजा स्वर्गीय आनन्द ब्रह्मशाह यहाँ शिकार खेलने आया करते थे।

यहाँ लगभग 20 किमी० लंबी और 5 किमी० चौड़ी एक गुफा है। गुफा की विशाल चट्टान सोन की ओर निकली हुई है। इस चट्टान की छत तथा दीवार पर अनेक चित्र बने हुए हैं। संभवतः चित्रांकन अथवा चित्र-लेखन परिमाण में अपेक्षया अन्यत्र से अधिक होने के कारण इस गुफा का नाम लेखनियाँ पड़ गया है।

यहाँ के चित्र अपने ढंग के अनोखे, कलात्मक तथा भावात्मक हैं। नाट्य और नृत्य के दृश्यों के अतिरिक्त एक गर्भवती स्त्री का चित्र भी यहाँ अंकित हैं। उस स्त्री के हाथ में कोई वस्तु है। एक अन्य चित्र से उस समय के दण्ड-विधान की प्रतीति होती है। एक आदमी खड़ा है, उसका एक हाथ पीछे है तथा दूसरे हाथ में डण्डा लिये हुए है। उसके उस डण्डे के ऊपर एक अन्य आदमी खड़ा है। उसके बगल में 5 अन्य आदमी खड़े हैं। पास में जो आदमी खड़े हैं, वे अधिक स्वस्थ तथा जल्लाद की तरह प्रतीत होते हैं। इस चित्र से आगे 5 अन्य आदमियों के चित्र बने हैं जो नृत्य और संगीत की मुद्रा में वाद्य-यन्त्र लिये हुये हैं। नीचे की पंक्ति में तीन आदमी दोनों हाथ फैलाये खड़े हैं। उनमें से एक की कमर में कुछ बंधा है और दूसरा कंधे पर लाठी लिये बड़ी मस्ती में चल रहा है।

एक पंक्ति में कुछ जानवर बने हुये हैं जिनमें गाय, बैल, बकरी आदि मुख्य हैं। एक बकरी बच्चा जनती हुई चित्रित है। इसी प्रकार एक जानवर की पीठ पर दूसरा जानवर चढ़ा हुआ है। यह दृश्य संभवतः पशु-मैथुन का है। यहाँ कुछ भागते हुए जनवरों के चित्र भी हैं जिन्हें कुल्हाड़ी लिये हुये कोई शिकारी दौड़ा रहा है। पालकी लिये कहार का भी एक चित्र है। पालकी में कोई दुल्हन बैठी हुई है। यहाँ कुछ जानवरों के चित्र हैं, जिनके बीच से दो नंगे आदमी दौड़ रहे हैं। फिर कुछ हरिण

पंक्तिबद्ध खड़े हैं। एक आदमी लाठी लेकर जानवरों को चरा रहा है। उसके सिर पर कलँगी सुशोभित है। यहाँ एक ऐसा चित्र मिला है जिससे पशु-बलि की प्रथा का आभास मिलता है। चनाइनमान की तरह यहाँ भी एक अल्पना डिजाइन देखने को मिली। सफेद रंग के बने भेंड़ और आदमी के चित्र भी देखे गये। यहाँ एक अप्सरा का चित्र चनाइनमान पश्चिम की तरह देखा गया। तीर से जानवर का शिकार करते हुए व्यक्ति का चित्र काफी सजीव मुद्रा में निर्मित है। इसी प्रकार नाचते गाते, युद्ध करते, भागते-दौड़ते, बकरी चराते, चमड़ा सुखाते, यात्रा करते मनुष्यों के चित्र भी प्रचुर संख्या में यहाँ बने हैं। इस गुफा में कुल्हाड़ी नुमा धारदार शस्त्रास्त्रों के कुछ ऐसे चित्र केरवा घाट की पहाड़ी में भी पाये जाते हैं।

यहाँ के चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ मानव-कुल निवास करता था और जानवरों का शिकार करके अपना पेट पालता था। इसने अपने रहने का स्थान ऐसा चुना था जहाँ खतरनाक पशुओं का भय न था। यह गुफा सोन की सतह से लगभग 500 मी० ऊँची है। इस गुफा को देख कर आश्चर्य इस बात का होता है कि मनुष्य इसमें रहता कैसे रहा होगा, क्योंकि गुफा के अन्दर बड़ी कठिनाई से बैठा या लेटा जा सकता है। इन पंक्तियों के लेखक ने इन चित्रों का रेखांकन लेट कर और खतरा मोल लेकर किया था। यहाँ थोड़ी सी भी असावधानी होने पर सैकड़ों मीटर नीचे गिर कर मर जाने का भय बना रहता है।

लेखनियाँ संभाग की अन्य गुफायें—लेखनियाँ और कण्डाकोट के आगे एक स्थान ढोकवा महारानी के नाम से जाना जाता है जिसका उल्लेख डॉ० जगदीश गुप्त ने भी किया है। यहाँ एक कछुआ का चित्र प्रसिद्ध है।

इस स्थान से थोड़ी दूर पर सोरहोघाट की गुफा है जिसमें शिकार के अनेक दृश्य बने हुए हैं। एक घोड़ा, एक महिष और कुछ बारहसिंगों के चित्र भी यहाँ हैं। हाथ फैलाये एक आदमी और हथेली का चित्र भी यहाँ निर्मित है। यहाँ के चित्र अब धुँधले पड़ते और विनष्ट होते जा रहे हैं।

यह ऐसा स्थान है, जहाँ और भी अनेक गुफाओं के मिलने की संभावना है। सोन का स्पर्श करती हुई जो पहाड़ी मध्य प्रदेश तक चली गई है उसमें अनेक गुफाएँ हैं, किन्तु वहाँ पहुँचना और उनमें चित्रों की खोज करना अत्यन्त दुष्कर प्रतीत होता है। इन पंक्तियों का लेखक कुछ दूर तक पैदल या नाव द्वारा यात्रा कर के इस तथ्य पर पहुँचा है कि इन स्थानों की यात्रा समूह में नौका द्वारा हो की जा सकते है। लेखनियाँ से

आगे एक स्थान चूनादरी के नाम से जाना जाता है। वहाँ भी कुछ चित्र बने हैं जिनका उल्लेख अन्य पुस्तकों में भी किया गया है। इसी प्रकार चुरिहर देवी के पास कण्डाकोट से 9 किमी० दक्षिण तथा मारकुण्डी से 10 किमी० पश्चिम शिव-मन्दिर से पूरब एक शिलाखण्ड पर धुंधले चित्र बने हैं। खुरैला ग्राम से लगभग दो कि० मी० उत्तर भी एक चित्रित गुफा के मिलने की बात बतायी जाती है। खुरैला से तीन कि० मी० उत्तर की एक गुफा में दो चित्र प्राप्त हुए बताये जाते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को ये चित्र प्राप्त नहीं हुए।

सूगापाँख, झरियानाला, कुप्पिहवा—ये शैलाश्रय कण्डाकोट और लिखनियाँ के मध्य स्थित हैं। झरिया में नृत्यरत मुद्रा में नर्तकों के दृश्य-चित्र पंक्तिबद्ध शैली में चित्रित हैं।[1] यहां एक परिवार का चित्रण-स्त्री-पुरुष-शिशु के रूप में देवाराधना की मुद्रा में प्रतीत होता है। स्त्री-पुरुष दोनों हाथ जोड़े सामने खड़े हैं। कुप्पिहवा में सफेद, काले, गेरू और रक्तवर्ण के नर-नारी के चित्र परिधान धारण किये हाथ में हाथ मिलाये आमोद-प्रमोद की मुद्रा में दिखाये गये हैं। ऐसा दो एक चित्र पंचमुखी में भी देखा गया था।

कइरी, दुअरा—कइरी एक पहाड़ी का नाम है जो राजपुर (शाहगंज) के दक्षिण तथा दुअरा राजपुर से रोजुल ग्राम के बीच में पड़ते हैं। कइरी में नृत्य की मुद्रा में मानवाकृतियाँ मुख्य हैं। दुअरा शैलाश्रय में अधिकतर मानवाकृतियाँ नृत्य की मुद्रा में देखी गयीं। नर-नारी दोनों एक साथ मिलकर हाथ में हाथ मिलाकर नृत्य करते दिखाये गये हैं। स्त्रियाँ सजी-सँवरी और पंक्तिबद्ध होकर नृत्य कर रही हैं। ऐसे ही चित्र लिखनियाँ (राजपुर) में भी देखे गये थे। घेरा बनाकर नाचते हुये नर्तकों के ऐसे चित्र प्रायः कम मिलते हैं। ये अपेक्षाकृत बाद के प्रतीत होते हैं।

बेलनघाटी संभाग

मुखादरी के गुहाचित्र—राबर्ट्सगंज से लेखनियाँ जाते समय शाहगंज पड़ता है। शाहगंज से सीधे पश्चिम लगभग 20 किलो मीटर दूर घोरावल नाम का एक टप्पा है। वहां से 5 कि० मी० दक्षिण बेलन नदी बहती है। इस नदी से 7–8 कि० मी० पश्चिम प्रसिद्ध मुखादरी है। यहाँ पहुँचने के लिए घोरावल और सतद्वारी से मार्ग बने हैं। गर्मी के दिनों में तथा पानी न पड़ने पर जाड़े के दिनों में भी यहाँ जीप से जाया जा सकता है। हमने यहाँ की यात्रा ट्रैक्टर से की थी। सतद्वारी में शिव-पार्वती की विश्व प्रसिद्ध सम्पृक्त प्रतिमा प्रतिष्ठित है। चिकने काले पत्थर पर बनी यह प्रतिमा कला की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। ऐसी कला खजुराहों के मंदिरों में प्रतिष्ठापित

1. दे० थिरकते शैल चित्र: राकेश तिवारी चित्र फ० 7

मूर्तियों में भी नहीं देखी गई। यहीं सोढ़री गढ़ का भग्नावशेष दुर्ग है जिसमें अनेक कलात्मक और सुन्दर प्रतिमायें बिखरी पड़ी हैं। यहाँ जो प्रतिमायें मिलती हैं उनमें प्रमुख हैं—विष्णु, शिव और दुर्गा की। 'मिरजापुर गजेटियर' के अनुसार ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में घोरावल से लेकर गोठानी (अगोरी के पास) का क्षेत्र 'द्वितीयकाशी' के नाम से जाना जाता था। यहाँ गहड़वाल-कालीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त होते हैं।[1]

शिवद्वारी या शतद्वारी से मुखादरी लगभग 5 कि० मी० उत्तर की ओर स्थित है। यहाँ का दृश्य अत्यन्त रमणीक है। बेलन नदी सुन्दर प्रपात बनाती है। नदी का पानी 3-4 सौ मीटर नीचे गिरता है। वहाँ से लगभग एक कि० मी० पश्चिम एक चित्रित गुफा है जो कोहबर के नाम से जानी जाती है। इस गुफा में शैल-खंडों पर लाल रंग के रेखाचित्र अंकित हैं। इनमें से कुछ चित्र स्पष्ट हैं और कुछ विनष्ट हो गये हैं। इन चित्रों का रेखांकन सीढ़ी पर चढ़कर किया गया है।

इस गुफा में एकाकी हाथी, हाथियों का झुंड, हथेली, पाँवों तथा उँगलियों के निशान, सजग हरिण तथा हरिणों के समूह, बारहसिंगा, बन्दर, भालू, अकेला आदमी तथा आदमियों के समूह चित्रित हैं। आदमियों को पंक्तिबद्ध दिखाया गया है। उनके सामने हाथियों का झुंड सूँड़ उठाये खड़ा है। बगल में जंगली सूअर, छोटे-बड़े के क्रम से चित्रित हैं। एक आदमी को हाथी के पाँवों के नीचे मरा दिखाया गया है। दो हाथियों के बीच में हथेली दिखाई गई है मानो हाथियों को रोकने का कोई संकेत हो। चट्टान के ऊपर बाईं ओर एक भयंकर सूअर भी चित्रित है। दाहिनी ओर आदमियों की कतार है जिसमें आगे का व्यक्ति कवच धारण किये योद्धा-वेश में सुसज्जित दिखाया गया है।[2] उसके पीछे वाले आदमियों के हाथों में अस्त्र हैं, पुनः नीचे की ओर बाईं तरफ एक झोपड़ी बनी है जिसके आसपास के वातावरण को गाँव या बस्ती जैसा दर्शाया गया है। झोपड़ी के पास बस्ती की ओर मुख किये हरिणों की पंक्तियाँ खड़ी दिखाई गई हैं।[3] बस्ती से हट कर कुछ दूर एक मंदिर में देवी की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई है। इसके दाहिनी ओर एक गाँव है। गाँव के समीप कुछ पालतू पशु तथा

---

1. मिरजापुर गजेटियर, खंड 26, 1911, घोरावल प्रकरण

2. इसी तरह का चित्र लेखनियाँ (राजपुर) में भी मिला है।

3. दे० मुखादरी संभाग का चित्र

आदमी दिखाये गये हैं। फिर आकाश की ओर सूँड़ उठाये, दाँत निकाले, एक शक्तिशाली हाथी को चिग्घाड़ते हुए दिखाया गया है। इसी हाथी के पावें के नीचे मृत व्यक्ति पड़ा है। इससे थोड़ी दूर पर हाथी का एक और चित्र बना है जो गाँव की ओर सूँड़ उठाये खड़ा है। इस हाथी के पैरों के मध्य पेट के नीचे 7 स्त्री पुरुषों को निर्भीक मुद्रा में पंक्तिबद्ध खड़ा दिखाया गया है। इसके बाद एक झोपड़ी है, झोपड़ी के बाद धन का चिह्न बना है।

इन समस्त प्रकार के चित्रों को देखने से पता चलता है कि उपर्युक्त चित्र अपने आप में मानव-विकास की कहानी कहते हैं। 'आखेट युग, गाँव का निर्माण, गाँव की सुरक्षित सीमा, गाँव से बाहर की सुरक्षित सीमा, शक्तिशाली जंगली पशु, हाथी पर मानव की विजय, आर्थिक आस्था और मानव कल्याण की भावना का विकास आदि चित्रों के माध्यम से पूर्व-प्रस्तर-युग और नव-प्रस्तर-युग के मानव ने अपने जीवन की समस्त भावानुभूतियों को चित्रांकित करके कालक्रम के शाश्वत प्रवाह में अपने बाद आनेवाली पीढ़ियों को अपने होने का ज्ञान कराने के लिए प्रमाण स्वरूप अमिट रहस्यात्मक दस्तावेज छोड़ गये हैं। इसके आगे बेलन नदी टोंस में जाकर मिलती है। बेलन घाटी में और उसके आस पास अनेक गुफाएँ हैं जिनके बारे में अन्य विद्वानों ने लिखा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं पुरातत्व बिभाग की ओर से किये गये सर्वेक्षण तथा खुदाई से महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है।

सोनघाटी संभाग

सीता कुण्ड के गुहाचित्र—मुखादरी और सीता कुण्ड दोनों विपरीत दिशा में दो छोर पर स्थित हैं। दोनों के बीच की दूरी लगभग 80 कि० मी० है। मुखादरी से सीताकुण्ड जाने के लिए पुनः शाहगंज, रावर्ट्सगंज होकर पन्नूगंज से आगे किरहुलिया होते हुए बिचलीपनौरा नामक गाँव तक जाना पड़ता है। यहाँ से सीताकुण्ड पहुँचने के लिए पन्नूगंज तक बस का साधन है। उसके बाद लगभग 30 कि० मी० की जंगली यात्रा तय करने के लिए गर्मी के दिनों में ट्रक, जीप और बाकी समय में पैदल का सहारा लेना चाहिए।

सोमा–सथारी के जंगलों में, सोन के सुरम्य तट पर सीताकुण्ड नामक एक स्थान है, जिसे 'अहीरमरवा' या 'बधमरवा' के नाम से भी जाना जाता है। कहते हैं, यहाँ अनेक अहीर गाय–भैंस चराते समय शेर के शिकार हो चुके हैं। यहाँ जंगली जानवर मांद बनाकर रहते हैं। सोन की घाटी में वे स्वतन्त्र विचरते, गुफाओं में रहते और कुण्ड या सोन में जाकर पानी पीते हैं।

इस स्थान की प्राकृतिक छटा निराली है। सोन की घाटी के कारण यह स्थान त्रिकोणाकार हो गया है। सोन की धाराएँ सतत प्रवाहित होती रहती हैं। उसे तीन तरफ से कैमूर की ऊँची श्रेणियाँ घेरे हुए हैं। वर्षा के दिनों में इन शिखरों से बहकर जल की धाराएँ नालों या झरनों का रूप धारण कर लेती हैं। नालों का पानी वन-भाग को दो भागों में विभाजित करता हुआ सोन में बिलीन हो जाता है।

सोन की सतह का भाग हजारों फीट नीचे है। ऊपर से पानी गिरने के कारण यहाँ झरना बन गया है। कहते हैं, कभी सीता, राम और लक्ष्मण के चरण यहाँ पड़े थे। इसी कारण इसका नाम 'सीताकुण्ड' पड़ गया। सीताकुण्ड से 3 किमी० पूरब अमलादर तथा खोढ़इला गाँव से 2 किमी० उत्तर-पश्चिम सिधवाघाट नामक स्थान पर भी शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। इनमें मानवाकृतियों के अलावा गाय–भैंस के चित्र भी आकर्षक शैली में चित्रित हैं।

सीताकुण्ड के पास कई गुफाएँ हैं। विशाल चट्टानें हैं। चट्टानों के नीचे का पूरा का पूरा भाग चित्रांकित है। शिलाओं का ऊपरी भाग पानी पड़ने के कारण काला पड़ गया है। नीचे की चट्टानें श्वेतवर्णा हैं। इसी की दीवारों तथा छतों पर अनेक प्रकार के कलात्मक चित्र बने हुए हैं। अधिकतर रेखा चित्र हैं। ये एक प्रकार से कथा-चित्र हैं। कथा-कहानी का सम्वन्ध मनुष्य के आदि जीवन से रहा है। मानव भी कथा-कहानी के द्वारा अपना मन बहलाया करता था। आज के जैसे मनोरंजन के साधन तो विकसित न थे। तब, वह अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति इन्हीं लिपि-संकेतों के माध्यम से किया करता था। ये चित्र उसकी तत्कालीन भाषा के प्रतीक हैं। उस समय के मानव की भाषा मूक थी। इन चित्रों के माध्यम से ही वह अपने भावों की अभिव्यक्ति मूक रूप में किया करता था।

ये चित्र प्राय: जानवरों के हैं। हाथी, घोड़ा, गैंडा, गाय, बैल, सूअर, मगर, गदहा, छिपकली, बिच्छू, सर्प, आदि के अतिरिक्त आदमी के चित्र भी बने हैं। धनुष-वाण लिये, प्रत्यंचा चढ़ाये हरिण का पीछा करता व्यक्ति दिखाया गया है जो जटा-जूट धारी है। हरिण बेतहाशा भाग रहा है। सीता कुण्ड की गुफाओं के चित्रों की तुलना मध्य प्रदेश के रायसेन की गुफा के चित्रों से की जा सकती है।[1]

इसी प्रकार कहीं हाथियों को और कहीं घोड़ों को पंक्तिद्ध खड़ा चित्रित किया गया है, मानो वे सेना-प्रयाण के लिए तत्पर हों। कहीं-कही आदमी भी पंक्तियों में खड़े हैं और

1. दे० श्री वाकणकर का लेख "साइंस टुडे" अप्रैल 1983 पृष्ठ-45-48।

उनके हाथ में शस्त्रास्त्र हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंगे ही उस युग के मानव के सच्चे मित्र थे। उन्हीं के साथ रह कर वह सुख-दुःख की अनुभूतियाँ किया करता था। जानवरों का मांस खाना, इधर-उधर घूमना, अपनी मस्ती में जीना, उसका स्वभाव था। तब वह अधिक सुखी भी था, इसलिए कि उसकी आवश्यकताएँ अत्यल्प थीं। आज का मानव सचमुच बहुत दुःखी है, इसलिए कि उसका जीवन बिखर गया है। जीवन की विसंग-तियाँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं। सचमुच ये गुहाचित्र तत्कालीन जीवन-दर्शन के जीते-जागते प्रमाण हैं। ये चित्र भी नवानुसंधानित हैं। यहाँ हिंस्र पशुओं का भय निरंतर बना रहता है। अतः गाँव के लोगों को साथ लेकर और संभव हो तो बन्दूक आदि लेकर ही जाना चाहिए। इन पंक्तियों के लेखक ने जून महीने में यहाँ की यात्रा की थी। शस्त्रास्त्र से सुसज्जित चार आदमी साथ थे। मार्ग में छोटे-बड़े जानवर तो मिले ही, जब बाघ की माँद दिखाई पड़ी तो हमारे होश उड़ गये। गाँव के लोगों ने बताया कि यहाँ बाघ रहता है। कुछ दूर आगे बढ़ने पर बाघ की गंध भी आयी, हम ठमक गये, पाँव थर्राने लगे, किन्तु साहस समेटे कुछ और आगे बढ़े तो एक बाघ दिखाई पड़ ही गया। हिम्मत ने जबाब दे दिया और हम लोगों ने उस दिन की यात्रा स्थगित कर दी।

कुछ दिन बाद पूरी तैयारी के साथ पुनः यात्रा की गयी। इस बार आठ आदमी अपने साथ थे अतः भय कम था। इस यात्रा में कोई खतरनाक जानवर भी नहीं मिला और हमने जाकर उक्त चित्रों के प्रथम दर्शन किये।

विजयगढ़ संभाग

विजयगढ़ के गुहाचित्र—राबर्ट्‌स गंज से चुर्क किसी भी साधन से जाया जा सकता है बस, ट्रेन, रिक्शा, ट्रक या पैदल भी। राबर्ट्‌सगंज से चुर्क मात्र आठ कि०मी० पूरब दक्षिण के कोण पर स्थित है। यहाँ सीमेन्ट फैक्टरी स्थापित है। राबर्ट्‌सगंज से चुर्क के मार्ग पर स्थित पंचमुखी के गुहाचित्रों का उल्लेख किया जा चुका है। चुर्क से धँधरौल सिंचाई विभाग के बँगले पर जाने के लिए वन-मार्ग बना है। ट्रकें, जीपें आती जाती रहती हैं। चुर्क से यह बाँध लगभग 8 कि० मी० दूर है। धंधरौल बाँध के नीचे से होकर एक जंगली मार्ग विजयगढ़ के किले तक चला जाता है। यहाँ जाते समय अपने साथ गांव के एक-दो व्यक्तियों को ले लेना चाहिए ताकि मार्ग भूलने न पाये और जंगली जानवरों से कदाचित सुरक्षा भी हो सके।

यहाँ का प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनमोहक है। जंगल की हरियाली, पहाड़ी हवाएँ, पक्षियों का कलरव, हमें एक नये संसार में ला खड़ा कर देते हैं। इस क्षेत्र में पानी

का संकट है। गरीब आदिवासी झुग्गियों का जीवन जीते हैं। किन्तु इनसे आत्मीयता ही मिलती है।

विजयगढ़ किला लगभग 3–4 सौ० मी० की ऊँचाई पर बना है। इस पर आरंभ में कोल और बालन्ड राजाओं का आधिपत्य था। बाद में चन्देलों ने अपना आधिपत्य जमा लिया। मनोरंजन घोष ने इस किले की यात्रा का बड़ा ही रोचक वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। उन्हें इसकी दीवारों में पांचवीं से आठवीं शताब्दी के मध्य के कुछ शिलालेख भी प्राप्त हुए थे जिनका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक में किया है।[1] वैसे भी किले की दीवारें, खंडहर, रनिवास; मुख द्वार, किले के ऊपर बने तालाब इस बात की ओर संकेत करते हैं कि कभी यह स्थान काफी समृद्ध था। किले के अन्दर ही एक और किला होने की बात बतायी जाती है। उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री ने इसके तिलस्मि होने का उल्लेख किया है: यह भी कहा जाता है कि राजा चेतसिंह यहाँ रहते थे और उनके ऊपर जब अंग्रेजों द्वारा आक्रमण किया गया तो वे भाग कर रीवाँ की ओर चले गये थे।[2] इस किले के बारे में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।[3]

जिस पहाड़ी पर यह किला निर्मित है, उसके पश्चिम की ओर प्रवेश-द्वार के पास एक शिलाखंड पर कुछ चित्र बने हुए हैं। मनोरंजन घोष के अनुसार इनका उल्लेख उनके पूर्व अन्य किसी ने नहीं किया है। यह चित्र लगभग 4 फीट लंबे किसी योद्धा का है जो पत्थर पर रेखाचित्र के रूप में खुदा है। विजयगढ़ व आस-पास के जंगलों में आज भी चीता, भालू, भेड़िया, कोइया, हिरण, नीलगाय, सूअर, शेर, आदि जानवरों का डेरा रहता है। इसी पहाड़ी के पीछे बांस के जंगल हैं। उन जंगलों से होकर थोड़ी दूर आगे जाने पर एक गुफा मिलती है जो लगभग 6 मी० ऊँची, 22 मी० लंबी और 3 मी० गहरी है। मनोरंजन घोष ने इसमें मिट्टी के पात्रों के टूटे हुए भाग भी पाये थे।[4] इस गुफा में लाल रंग से हरिणों के दो चित्र दीवार पर बने हैं जिन्हें दो आदमी हाथ में कुछ लिये दौड़ा रहे हैं।[5] इस तरह के चित्र सीताकुण्ड और कण्डाकोट में भी देखे

1. मनोरंजन घोष की पांडुलिपि, पृ० 159–60

2. काशी का इतिहास; डॉ० मोतीचन्द्र, पृ० सं० 256–286

3. क्या वनवासी किंवदन्तियाँ...., डॉ० अर्जुनदास केसरी, धर्मयुग, 6 जुलाई 1980, पृ० 31

4. मनोरंजन घोष की पांडुलिपि, पृ० 158

5. वही पांडुलिपि, पृ० सं०–58–59

गये हैं ।[1] विजयगढ़ के आसपास की पहाड़ियों में और भी चित्रित शैलाश्रय तथा गुफाएँ खोजी जा सकती हैं। श्री राकेश तिवारी ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण करके कई नयी गुफाओं की खोज की है जिनका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'थिरकते शैल चित्र' में किया है ।[2]

धँधरौल—धँधरौल बंधे से दक्षिण मऊ गाँव से लगभग 2 कि० मी० पहले एक पहाड़ी की गुफा में एक रक्त वर्ण के बने हाथी, हरिण, सूअर, धनुषधारी आदि के चित्र लगभग एक ही तरह के आसपास में ही चार शैलाश्रयों में मिले हैं।

रमना पहाड़—मऊ गांव से सटा हुआ पूरब की ओर एक पहाड़ है जिसके ऊपर उत्तर-दक्षिण की ओर 4 शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। इनमें भी धँधरौल जैसे चित्र ही बने हैं।

कउआ खोह और हथबनवाँ—ये दोनों स्थान विजयगढ़ दुर्ग से लगभग 18 किमी० दक्षिण पश्चिम बघनार गांव के समीप स्थित हैं। कउआ खोह की गुफा में शताधिक मानवाकृतियां पूरित शैली में नृत्य की मुद्रा में चित्रित हैं। नर्तकों की टाँगे लम्बी हैं। वे हाथ में कुछ लिये हुए हैं। आकृतियाँ नर-नारी दोनों की हैं और वे सभी नंगे ही हैं। इनमें से कुछ ऐसे चित्र भी हैं जिनको देखने से युद्ध की विभीषिका के परिणामस्वरूप अस्तव्य का आभास मिलता है। इसी गुफा में एक वीर का चित्र भी देखा गया जो अपने हाथों से हाथी उठाये हुये है। यानी उस समय का आदमी काफी शक्तिशाली होता था। ये चित्र पंक्तिवद्ध नहीं हैं।[3] हथबनवाँ में पूरित शैली में बड़ी आकृतियों में नर्तको के दृश्यचित्र अंकित हैं जो सोरहोघाट के चित्रों के मेल में हैं। ये एक ही दिशा में मुख करके नाच रहे हैं।[4]

तुरियानी, मंगरदहा, गोहमनवा तथा मतहवा—ये स्थल विजयगढ़ किले से लगभग तीन किमी० दक्षिण-पूर्व की ओर जंगल में स्थित हैं। तुरियानी, मतहवा, मगर-

---

1. दे० सोनघाटी संभाग के सीताकुण्ड के चित्रों का वर्णन और लेखनियाँ संभाग के कण्डाकोट के चित्रों का विवरण

2. दे० थिरकते शैल चित्र, पृ० 9–10

3. दे० थिरकते शैल चित्र: राकेश तिवारी–पृष्ठ–34 चि० फ० 5

4. वही पृष्ठ–36 चि० फ० 10

दहा में नर्तकों के चित्र पूजा-आराधना की मुद्रा में यानी पूजा-नृत्य के रूप में प्राप्त हुए हैं जो काफी महत्वपूर्ण हैं। मतहवा में नर्तकों के साथ एक पशु-आकृति भी देखने को मिली जिससे सिद्ध होता है कि मानव अपने आनंद के क्षणों में भी पशुओं की उपेक्षा नहीं करता था।[1] यहाँ के कुछ चित्र पूरित और कुछ अर्द्ध पूरित शैली मे चित्रित हैं। इनमें एक आदमी एक टाँग का और एक अन्य डेढ़ टाँग का और बाकी दो-दो टाँग के दिखाये गये हैं।[2] मगरदहा के नर्तक कमर पर हाथ धरे वाद्ययंत्र लिये थिरकते हुए दिखाये गये है। ऐसा ही दृश्य दंतहा-पहाड़ के शैलाश्रय में भी देखा गया था। तुरियानी के शैलाश्रय में पाँच नर्तकों के चित्र सज्जित रूप में दिखाये गये हैं। गोहमनवाँ में भी भाव-नृत्य के दृश्य चित्रित हैं जो बड़े आकर्षक हैं। सूगापाँख के चित्र भी इसी तरह के भावपूर्ण हैं।

हिरना-हिरनी—विजयगढ़ संभाग की इस गुफा में अल्पना डिजाइनें पंचमुखी (पश्चिम) की गुफा की तरह बनी हुई हैं। डिजाइनों के अलावा मुर्गा, पालकी, स्त्री, पुरुष, बकरी, बैल, बिच्छू, साँप, बारहसिंगा, हरिण, कुत्ता, सियार, घोड़ा, खच्चर, हाथी, धनुर्धर के सजीव और आकर्षक चित्र गेरू अथवा रक्तवर्ण के बने हुए हैं।

इस गुफा की खोज में हमलोग जीप से ज्येष्ठ की तपती दुपहरी में निकले थे और प्रातःकाल राबर्ट्सगंज से चलकर विजयगढ़ किला होते हुए वहाँ तीन बजे दिन पहुँचे थे। मुझे याद है, जीप उलटते-उलटते बची थी। मऊ के बबन खरवार ने साहस बँधा कर हमें वहाँ पहुँचाया था। पानी और कुछ भोजन-वस्तुएँ साथ थीं, यही ठीक था।

घोड़मांगर—विजयगढ़ दुर्ग से लगभग 5 किमी० दूर दो नदियों के संगम पर सोन के ही क्षेत्र में घोड़माँगर या घोड़माँगरा नामक गुफा में मगर, घड़ियाल, हरिण गैंडा और घोड़ा आदि जानवरों तथा जीवजंतुओं के चित्र मिले हैं जिनका उल्लेख अन्यत्र हुआ है।

यहाँ गेरू तथा सूखे रक्त वर्ण के नर्तकों के चित्र सुसज्जित बेशभूषा में बने हैं। ऐसी आकृतियों की पूजा लोक में आज भी प्रचलित है। गोठानी (मिर्जापुर) में ऐसी एक मूर्ति भी मिली थी जिसकी पूजा वहाँ के आदिवासी 'बघउत' के नाम से करते हैं।

---

1. वही पृष्ठ–35 चि० फ० 8

2. वही पृष्ठ–32 चि० फ० 9

केरवाघाट के गुहाचित्र—केरवाघाट खोड़वा पहाड़ कउआखोह का ही एक भाग है जो कैमूर घाटी का सर्वोच्च शिखर है। पहले यहाँ पहुँचना आकाश के तारे तोड़ने के समान था, किन्तु जंगलों के लगातार कटने और पहाड़ियों के तोड़े जाने के कारण अब यहाँ पहुँचने के लिए राबर्ट्सगंज या चुर्क से सलखन जाना होगा। सलखन से एक रास्ता खोड़वा पहाड़ को जाता है जिससे ट्रक या जीप जा सकती है। राबर्ट्सगंज से सलखन बस द्वारा 18 कि० मी० दक्षिण पड़ता है। यहाँ से खोड़वा पहाड़ लगभग 8 कि० मी० दूर है और सामने सिंह की भाँति दिखलाई पड़ता है। यहाँ भी अपने साथ भोजन-सामग्री, सुरक्षा के लिए बंदूक या कुल्हाड़ी लेकर दो-चार व्यक्तियों के साथ जाना चाहिए। पहाड़ी के ऊपर या आसपास आदिवासी जातियों ने झोपड़ियाँ लगा ली हैं।

मैंने इसकी पहली यात्रा दिसम्बर, सन् 1966 में की थी। हम 20-22 आदमी प्रातः 7 बजे ही एक ट्रक से चल पड़े थे। 9 बजते-बजते खोड़वा की कमर के पास पहुँचे जहाँ से डेढ़ कि० मी० पैदल यात्रा के बाद पहाड़ की चढ़ाई शुरू होती है। दो घंटे चढ़ाई में लगे थे। एक बजे दिन खोड़वा की पीठ पर हम लोगों ने अपने चरण रख कर अत्यन्त हर्षोल्लास का अनुभव किये थे। यहाँ पहुँचने पर ऐसा लगता है कि हमीं सबसे ऊँचे हैं और धरती के लोग बौने हैं खोड़वा पहाड़ को स्पर्श करती सोन की धारा दक्षिण को बहती है। खोड़वा पहाड़ से सोन का दृश्य देखते ही बनता है। खोड़वा पहाड़ के ऊपर मंगेश्वरनाथ का मंदिर है जिसके पीछे कई किवदन्तियाँ प्रचलित हैं।[1] केरवा पहाड़ के चित्रों का छायांकन श्री देवकुमार मिश्र ने भी किया है।

इस पहाड़ी के चारों ओर कई चित्रित गुफाओं के पाये जाने का अनुमान है। मंगेश्वरनाथ से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर पर केरवाघाट नाम का एक स्थान है।[2] यहाँ कई लंबी-चौड़ी गुफाएँ हैं जिनकी छतों और दीवारों पर साँप, बिच्छू के अतिरिक्त गैंडा, हरिण, बारहसिंगा, चीतर, साँभर, सूअर, घोड़ा, महिष, बैल, ऊँट, कोइया, बकरी, कुत्ता, हाथी, मगर, मछली, छिपकली आदि के सजीव चित्र बने हुए हैं। यहां की गुफाओं में हथ कुठार आदि के चित्र भी देखे गये। लगता है, आदिम मानव इन्हीं से जंगली जानवरों का शिकार किया करता था। नंगे आदमियों को जानवरों के भय से भागते हुए भी दिखाया गया है। आदमियों के कुछ चित्र युद्ध-रत, नदीपार करते,

---

1. दे० खोड़वा पहाड़ की चढ़ाई, डॉ० अर्जुनदास केसरी, आज-1-1-70

2. दे० सोन के पानी का रंग, पृष्ठ 237

नाव पर सवार, हाथी पर सवार, नृत्य करते हुए, सहयोग से बोझ ढो कर ले जाते हुए, नाव खेते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। अनेक चित्र समझ में नहीं आते कि वे किस उद्देश्य से बनाने गये हैं।[1]

खोड़वा पहाड़ इसे इसलिए कहा जाता है कि यह वहीं से खोड़(लँगड़ा) हो गया है। सोन की धारा पश्चिम से आती किन्तु खोड़वा के ही कारण दक्षिण को मुड़ जाती है। खोड़वा न होता तो सोन की धारा दक्षिण न जाकर पूरब-उत्तर की ओर बही होती। यह स्थान साधना के योग्य है और कहा जाता है कि अनेक साधु, काशी के संत-महात्मा इन पहाड़ियों में आकर शान्ति लाभ करते थे।[2]

केरवा पहाड़ और चोपन के आस-पास कुछ और भी चित्रित गुफाएँ मिली हैं जिनमें मुख्य हैं-(1) सोनपार कोन के निकट सोन से दक्षिण चोपन से लगभग 20 किमी० दक्षिण- पूरब की एक गुफा, (2) चोपन से लगभग 18 किमी० कनच गाँव के पास की गुफा, (3) चोपन से लगभग 30 किमी० पूरब गड़ाँव के पास एक पहाड़ की गुफा, (4) चोपन के पास सेन्दुरिया गांव से दक्षिण की एक गुफा। इनका उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है किन्तु मौके पर चित्र दिखलाई नहीं पड़ते।

अहरौरा संभाग

लेखनियाँ के गुहाचित्र—अहरौरा संभाग भी कैमूर रेंज के बीच में स्थित है। यातायात के मुख्य साधनों में सरकारी बसें, ट्रकें, जीपें, तथा टैक्सियां हैं। सड़क पक्की है। राबर्ट्सगंज से वाराणसी की दूरी 89 कि० मी० है।

अहरौरा राबर्ट्सगंज मार्ग पर अहरौरा बाँध से पश्चिम एक नाले पर पुल बधा है। वहाँ 2-3 दुकानें हैं। बरसाती नाले का पानी पश्चिम से पहाड़ से आकर सुन्दर झरना बनाता है। यहाँ गायों को चराते, लकड़ी काटते और गिट्टी तोड़ते सर्वहारा वर्ग के लोग सर्वत्र मिल जाते हैं। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहारी है। चारों ओर पहाड़ियाँ और झरने हैं। यहाँ का सूर्योदय और सूर्यास्त देखने योग्य है। अहरौरा में एक प्राचीन दुर्ग भी है जो बाँध में डूब गया है। बाँध से उत्तर दुर्गा जी का मन्दिर है जहाँ वर्ष में एक या दो बार मेला भी लगता है। कहते है, बुद्ध काल

---

1. दे० सोनघाटी संभाग के चित्र

2. काशी का इतिहास, डॉ० मोतीचन्द, पृ० 156–170

में यहाँ एक मृगदाँव था[1] यहां प्राप्त एक बौद्ध स्तम्भ से ऐसा प्रतीत होता है कि बुध्द काल में यह स्थान महत्व का था। अहरौरा में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कभी अहीरों की बस्ती थी। यहाँ का सिल्क मशहूर था और चिरौंजी तथा गल्ले का भी अच्छा व्यापार होता था।

लेखनियां दरी पर पुल के पास ही एक गुफा है जिसमें सूँड़ उठाये हाथियों, हरिण, मोरों और देवी–देवताओं के चित्र बने हैं। इसी नाले पर ऊपरी भाग में कुछ और जानवरों के चित्र भी हैं। इन चित्रों की शैली पूरित है।

छातुग्राम के गुहाचित्र—चुनार से छातु के लिए अहरौरा होकर एक सड़क जाती है। यहाँ निरीक्षण भवन बना हुआ है। यहां से दो रास्ते बनते हैं। एक राबर्टसगंज को चला जाता है और दूसरा पश्चिम की ओर मुड़ कर महररिया गाँव के निकट सिंचाई–विभाग के कार्यालय डोंगिया तक चला जाता है। महररिया गांव के पास ऊपर गरई नदी के किनारे गुहाचित्र बने हैं। यहाँ के दो चित्रों का छायांकन मनोरंजन घोष ने किया है[2]। यहाँ से राबर्ट्सगंज जाने के लिए सीधा मार्ग मिलता है जो अहरौरा से लगभग 37 कि0 मी0 दक्षिण है।

छातुग्राम का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। जंगल का दृश्य, पक्षियों का कलरव, नदियों, नालों, झरनों का मधुर संगीत, गायों का रँभाना, गाँव के लोगों का रोजी-रोटी की तालाश में घूमना, किसी का गिट्टी तोड़ना, किसी का लकड़ी काटना कितना सुहावना लगता है। प्रागैतिहासिक युग में ऐसे सुन्दर स्थान पर मानव रहता था और अपने अवकाश के क्षणों में चित्र बनाकर अपने घरों को सजाता था। कौन जानता था कि उसके द्वारा निर्मित ये चित्र एक न एक दिन उसकी कहानी दुहरायेंगे। इन चित्रों की ओर पहली बार ध्यान आकृष्ट हुआ मनोरंजन घोष महोदय का। इस स्थान पर 10 दिन तक ये रहे भी थे। उन्होंने छायांकन का कार्य लिखनियाँ से आरम्भ किया था। लेखनियां छातुग्राम बँगले से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग 3 कि० मी० दूर है। इसी के पास गरई नदी सतत प्रवाहित होती है। गरई से लगभग 15 मीटर पर स्थित पहाड़ी में एक गुफा है। नदी से 2 मीटर की ऊँचाई पर 20 मीटर के क्षेत्र में चित्र बने हुए हैं। यहाँ जो चित्र हैं उनमें स मुख्य हैं—हाथी से शिकार करने का दृश्य, उसके नीचे एक चिड़िया के पकड़ने का दृश्य, इसके बायें एक ओर एक घोड़े का

---

1. अहरौरा का दुर्ग, अर्जुनदास केसरी, 'आज' दि० 2–1–71 ई०

2. दे० मनोरंजन घोष पांडुलिपि, पृ०-166

चित्र। इस गुफा की ओर एक हाथी के पकड़े जाने का दृश्य-चित्र बना हुआ है। इससे ऊपर बायें हाथ के कोण पर दौड़ते हुए दो चीतों का भी चित्र बना हुआ है। दाहिनी ओर ऊपर के कोने में चीतों के दो और चित्र बने हैं। इसी के समीप हरिणों के चित्र बने हैं जिन्हें तीन आदमी खींच कर ले जा रहे हैं। इनमें एक चित्र काले और दो चित्र सफेद तथा लालरंग के हैं। इसके बाद एक हस्तिआरोही का चित्र भी बना है जिसके हाथ में शस्त्रास्त्र है। लगता है, वह सामने के हाथी का पीछा कर रहा है। इसके बाद दो आदमियों और फिर दो शस्त्रधारी अश्वारोहियों के चित्र भी बने हैं। इसके बाद सबसे बायें दो शिकारियों और हाथी का एक दल चित्रित है जिसके पाँव के नीचे एक आदमी मरा पड़ा दिखाया गया है। ऐसा ही एक चित्र मुखादरी में भी देखा गया था। यहाँ के एक दो चित्र काले और पीले रंग के और शेष लाल रंग के बने हैं। यहाँ कुछ और चित्र भी बने हैं जो क्रमशः मोर, पदयात्री, अश्वारोही, मोर, चिड़िया, आदमी (घोड़े की बागडोर पकड़े हुए), एक हाथी जिसका महावत छड़ी से उसे अपने वश में कर रहा है, एक जल्लाद, एक अन्य जानवर, आदमी, वर्गाकार आकृति और उसके अन्दर कुछ प्रतीक चिह्न कुछ अन्य रेखाएँ तथा धन और गुणित के निशान, फिर तीन व्यक्ति जिनमें से दो किसी जानवर पर सवार हैं, दो चीते और दो व्यक्ति आदि चित्रित हैं। इसी तरह के चित्र पंचमुखी में भी हैं।

कोहबर (लेखनियाँ) के गुहाचित्र—लेखनियाँ गुहाचित्र स्थल से लगभग चौथाई कि० मी० नाले के ऊपर की ओर कोहबर नाम का एक स्थान है। इसकी ऊँचाई लगभग 10 मीटर क्षेत्र लगभग 12 मीटर और गहराई लगभग 5 मीटर है। इस गुफा में ऊपर की छत पर तथा गुफा की दीवार पर कुछ बड़े सुन्दर चित्र बने हैं। इनमें से एक दृश्य-चित्र हिंसक जानवर का है जो हरिण पर आक्रमण कर रहा है। यह चित्र लाल और काले रंग के मिश्रण से बनाया गया है। लाल और काले रंग में ही दो हरिण पंक्तिबद्ध दिखाये गये हैं। इसी रंग में एक शस्त्रधारी आदमी का भी चित्र बना है। इसके पास एक और हरिण, अक्षरों के निशान तथा योद्धा के चित्र भी आकर्षक मुद्रा में बने हैं। यहाँ के अक्षर पंचमुखी के अक्षरों से मिलते-जुलते हैं।

भल्दरिया के गुहाचित्र—इन चित्रों को भी सर्वप्रथम मनोरंजन घोष महोदय ने ही देखा था। यह स्थान कोहबर छातुग्राम स्थित निरीक्षण-भवन को जाने वाले मार्ग पर पड़ता है। वहाँ भी एक नाला बहता है। उसके समीप से दो रास्ते एक दूसरे को जोड़ते हैं। नदी या नाले के बीच में एक गड्ढा है जिसमें प्रायः हर समय पानी रहता है। यहीं वह गुफा है जिसमें पहुँचने के लिए सँकरे रास्ते पार करने होते हैं। इसकी ऊँचाई लगभग दो मी०, चौड़ाई 25 मी० और गहराई सवा मी० है।

इस गुफा में बने हुए चित्र कुछ मिट गये हैं, किन्तु कुछ अभी भी बचे रह गये हैं। जो बचे हैं, उनमें से एक चित्र लगता है किसी भयानक अस्त्र का है। यह आदमी के आकार से भी बड़ा है और गाढ़े लाल रंग में चित्रित है। इसके पास दो चित्र मनोरंजन-घोष के शब्दों में 'दश' और 'जिशिद' के हैं।[1]

यहाँ से नदी पार करके लगभग 3 कि० मी० पहाड़ की ओर जाने पर छातुग्राम के बँगले से लगभग साढ़े चार कि० मी० दूर भल्डरिया की ही एक दूसरी गुफा मिलती है। यहाँ काकवर्न महोदय भी पहुँचे थे। उन्होंने यहाँ के कुछ चित्र भी खींचे थे। इस शैलाश्रय की लंबाई लगभग 15 मी० और ऊँचाई 3 मी० है। इसमें पाये गये चित्रों का विवरण इस प्रकार है।

सारस पक्षी, हाथ फैलाये-हाथ में वंडल लिये हुए स्त्री-पुरुष, पुरुष द्वारा सूअर और सामर के शिकार दृश्य, बड़े हिरन, हस्ति आरोही, कुत्ता, अन्य पक्षी, नृत्य-संगीत की मुद्राएं, युद्ध और यात्रा के दृश्य-चित्र। सूअर को घेर कर मारने का दृश्य उसी प्रकार चित्रित है जिस प्रकार विजयगढ़ में गेंडे को मारने का दृश्य चित्रित है। यहाँ जे० काकवर्न के हस्ताक्षर से प्रतीत होता है कि सबसे पहले उन्होंने ही इन चित्रों को खोजा था। चित्रों की विविधता से प्रतीत होता है कि इस गुफा में अनेक मानव-कुल समय के अन्तराल से रहते रहे और उन्होंने खाली समय का उपयोग करने के लिए अपने जीवन-चित्र अंकित किये।

1—गुफा की दीवार पर चार सारसों का चित्र बना है जो पानी में खड़े हैं और जिनके दाहिनी ओर एक वृक्ष है। वृक्ष के ऊपर दो बन्दर बैठे हैं। यह चित्र गाढ़े लाल रंग का है।

2—शिकार दृश्य—यहाँ एक हरिण का चित्र बना है। हरिण के चित्र के ऊपर एक दूसरा हरिण है। इसके बाद शिकारियों के कई चित्र एक साथ बने हैं। हरिण के गले में तीर लगा हुआ है। उसके ऊपर एक शिकारी कुत्ता आक्रमण कर रहा है। इस दृश्य-चित्र को बनाने में काले, लाल और पीले तीन रंगों का प्रयोग किया गया है।

3—उपर्युक्त चित्रों के अतिरिक्त कुछ और चित्र, रेखाकृतियाँ तथा लिपि अक्षर बनाये गये हैं जिनके बारे में ठीक से नहीं कहा जा सकता कि वे किस अभिप्राय या भाव के द्योतक हैं।

1. मनोरंजन घोष की पांडुलिपि, पृ० 163

4—लाल रंग में दो जंगली जानवरों के चित्र बने हैं।

इस चित्रित पहाड़ी से नीचे उतरते समय एक और शैलाश्रय प्राप्त हुआ जो नाले से सटा हुआ है। इसकी ऊँचाई 3 मी०, चौड़ाई लगभग 14 मी० और गहराई लगभग 5 मी० है। यहाँ भी अनेक चित्र बने हुए हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

1—मोर—यहाँ एक मोर का चित्र देखा गया जिसकी चोंच में कोई वस्तु लगी हुई है। गाढ़े लाल रंग का यह चित्र छत पर बना है। इसी के साथ मोरपंखधारी एक अन्य आदमी का चित्र भी बनाया गया है।

2—अश्वारोही—यहाँ एक अश्वारोही का चित्र बना हुआ है जिसके बायें हाथ में बागडोर या अन्य कोई चीज है। घोड़ा रफ्तार में है और अश्वारोही के दाहिने हाथ में तलवार या कोई प्रस्तर-खंड है। इसका रंग लाल और पीला है।

3—ऊँट आरोही—इधर ऊँट-आरोहियों के चित्र बहुत कम उपलब्ध होते हैं। यहाँ ऐसा एक चित्र है जो गाढ़े लाल रंग का है।

4—मछली मारने का दृश्य—यहाँ गाढ़े लाल, भूरे और काले रंगों के प्रयोग से बने अन्य चित्र देखे गये। एक चित्र में एक नदी अंकित है, जिसके किनारे पर एक मछली है, बीच में जाल तनी है, थोड़ी दूर पर कुछ आदमी खड़े हैं। इस तरह का चित्र भी अन्यत्र नहीं देखा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मछली का शिकार भी योजनाबद्ध तरीके से किया जाता था। यहाँ एक घायल सूअर का चित्र भी काफी सजीव रूप में देखा गया। सूअर के चित्र मुखादरी और पंचमुखी की गुफाओं में भी मिलते हैं।[1]

महड़रिया के गुहाचित्र—राबर्ट्सगंज-अहरौरा मार्ग पर सुक्रत से महड़हिया जाने का मार्ग बना हुआ है। गरई नदी के ऊपरी प्रवाह की ओर लगभग 8 कि० मी० दूर जाने पर गुफाओं में उत्कीर्ण अभिलेख तथा चित्र मिलते हैं। इस क्षेत्र में अभिलेख पहली बार यहीं मिले। गुफा की दीवारों पर और भीतरी भाग में भी चित्र बने हैं। काकबर्न ने इस स्थान की यात्रा की थी और प्रथमतः इन चित्रों को खोज निकाला था। यहाँ भी जानवरों के चित्र तथा मानवाकृतियां बनी हैं। मनोरंजन घोष ने भी इनका उल्लेख किया है और उनमें से दो का छायांकन करके उन्होंने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है।

---

1. दे० पंचमुखी और मुखादरी का विवरण।

1—नृत्य दृश्य—तीन व्यक्तियों के एक साथ नृत्य करने का दृश्य[1] नर्तकों के बाल बढ़े हैं। चित्र लाल रंग के हैं। इसी चित्र के साथ चार अन्य आदमियों के चित्र नृत्य की ही मुद्रा में प्रदर्शित हैं। मिरजापुर में इस तरह के चित्र राजपुर स्थित लेखनियाँ में भी देखे गये हैं।[1] यहाँ के कुछ चित्र मिटकर नष्ट हो चुके हैं तथा अन्य भी नष्ट होते जा रहे हैं।

सामदेवी पहाड़ी के गुहाचित्र—मिर्जापुर जिले के चुनार तहसील में सामदेवी नामक प्रसिद्ध पहाड़ी के निकट करहिया टोलकिया जातवा नामक स्थान में कुछ चित्रित शैलाश्रय मिले हैं। इनमें गेरू रंग के चित्र मिले हैं। प्रमुख चित्रों में पशु-पक्षी, सूर्य, चन्द्रमा, लहरदार सर्पाकृतियाँ चौकोर या गोलाकार आकृतियाँ मुख्य हैं। पशुओं की आकृतियाँ भागती हुई मुद्रा में चित्रित हैं।

यहाँ आखेट के दृश्य-चित्रों की प्रधानता है। एक पशु को धनुष से छोड़े गये वाण से विधा हुआ दिखाया गया है। इस तरह के चित्र सीताकुण्ड भल्डरिया और विजयगढ़ में भी दिखाये गये हैं।

इन चित्रों की सर्वप्रथम खोज डा० आर० सी० सिंह, उ० प्र० राज्य पुरातत्व के निर्देशक ने को है। उनके एक वक्तव्य के अनुसार ये चित्र पुरा या मध्य पाषाण काल (प्रागैतिहासिक काल) के हैं। उनके अनुसार कुछ चित्र मानव, मृग, हाथी, के भी हैं जो नीले और काले रंग के हैं।[2]

यहाँ प्राप्त सूर्य और चन्द्रमा की आकृतियाँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। ऐसे चित्र अन्यत्र नहीं मिलते।

इसी प्रकार प्रागैतिहसिक काल के कुछ साक्ष्य वाराणसी जिले के चकिया तहसील के पास कर्मनाशा और चन्द्रप्रभा नदियों की तलहटियों में भी मिले हैं, मिर्जापुर में ये छतर की नदी,सिमरिया नाला, जोगियादरी, अदवा, इलाहाबाद के मेजा संभाग में बहने वाली बेलन, सेवती टोंस के पास भी मिले हैं इनकी खुदाई में साधारण तश्तरियां, गिलास, कटोरे भी मिले हैं।[3]

---

1. लेखनिय संभाग का चित्र फ० 14,15

2. दे० 'आज' दैनिक, वाराणसी, 10 अक्टूबर, 76

3. मध्यगंगाघाटी में हड़प्पा संस्कृतिः गोबर्द्धनराम शर्मा 'आज' 19-11-78 पृ० 5

ललमनियाँ पहाड़ी के गुहाचित्र—इसी संभाग में अदलहाट से शेरवा जाने वाले मार्ग पर ललमनियाँ नाम की एक पहाड़ी है जिसमें दो गुफाएँ मिली हैं। पहाड़ से पश्चिम जफराबाद से दक्षिण की ओर दोनों गुफाएँ आस पास ही हैं। इनमें मानवाकृतियाँ मुख्य हैं। उन्हे पंक्तिबद्ध दिखाया गया है। एक व्यक्ति युद्ध की मुद्रा में है। पूरे दृश्य से सेना प्रयाण का आभास मुखादरी की तरह मिलता है। ललमनियां पहाड़ी लोरिका कुदान के लिए भी बहुश्रुत है।[1]

शेरवाँ—शेरवाँ नामक स्थान पर पीछे की पहाड़ी में एक चित्रित गुफा मिली है जिसमें थोड़े से चित्र गेरू रंग में जानवरों और मानवों के मिले हैं। ये चित्र लिखनियाँ (राजपुर) के चित्रों मिलते-जुलते हैं।

चुनार

चुनार के पास पाये गये शैलाश्रयों का चित्रण यथास्थान किया गया है। वे चित्र उद्योग और कृषि प्रधान हैं। इसी संभाग में सक्तेशगढ़ रेलवे स्थान के पास, लगभग तीन किमी० दक्षिण सिद्धनाथ की दरी है जिसका सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से जोड़ा जाता है। इस दरी के पास सक्तेशगढ़ का दुर्ग भी है। यहाँ की एक गुफा में गेरू रंग के चित्र पहली बार राज्य पुरातत्व संगठन सर्वेक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत 1976 में श्री राकेश तिवारी द्वारा खोजे गये थे। हनुमान जी के मंदिर के समीप दरी से लगी एक गुफा में मानव और पशु आकृतियां बनी हैं। ये भी अन्य गुफाओं में बने चित्रों के मेल में हैं। चित्रों की संख्या भी कम है।

चुनार संभाग के ही अन्तर्गत एक और शैलाश्रय दँतहा पहाड़ में मिला है जो जागो बाँध के निकट बनीमिलिया गांव के समीप स्थित है।

मिरजापुर-संभाग

विंढमफाल के गुहाचित्र—मिरजापुर से विंढम फाल जाने के लिए मार्ग बना हुआ है। मिरजापुर के लोग अवकाश के दिनों में इस स्थान पर भ्रमण के लिए आते हैं। वर्षा के दिनों में यहां का दृश्य और भी मनोरम हो जाता है। झरने का पानी नीचे गिर कर कोहरे का रूप धारण कर लेता है। इसी स्थान पर कुछ गुफाएँ प्राकृतिक रूप से बनी हैं। इनमें से एक गुफा में प्रागैतिहासिक काल के कुछ बड़े ही दुर्लभ चित्र

---

1. दे० लोरिकायन, डा० अर्जुन दास केसरी, भूमिका भाग, पृ० 18

बने हुए हैं। डॉ० जगदीश गुप्त ने इन चित्रों का विस्तृत अध्ययन किया है। वैसे कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इनके बारे में लिखा है। इस गुफा में चीतर, हरिण, आदि जानवरों के चित्र हैं। यहाँ कुत्ता-गाड़ी का भी एक चित्र मिला है जिसका उल्लेख कई विद्वानों ने किया है। दो कुत्ते दो पहिये वाली एक गाड़ी को खींच रहे हैं। उस गाड़ी में एक आदमी हाथ से कुछ पकड़े हुए खड़ा है। लगता है, वह कोड़े से कुत्तों को मारता भी है। यहाँ के बहुत से चित्र मिट चुके हैं।[1]

मिरजापुर के अन्य चित्रित शैलाश्रय—मिरजापुर का अधिकांश क्षेत्र पहाड़ियों और खोह-कन्दराओं से घिरा है। इन सभी स्थानों पर पहुँच पाना भी आसान नहीं है। ऐसी स्थिति में यह सर्वथा स्वाभाविक है कि अनेक गुफाएँ छूट गई हों। लखनऊ के पुरातत्व विभाग ने राजगढ़ क्षेत्र में कुछ खुदाई का कार्य कराया है। उनके अनुसार चुनार तहसील में कुछ महत्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो प्रागैतिहासिक कालीन हैं। खुदाई में उन्हें कुछ औजार मिले हैं जिनके आधार पर अनुमान है कि प्रागैतिहासिक काल के मध्य-पाषाण तथा नव-पाषाण काल में लघु तथा कुटीर उद्योग विद्यमान थे। कृषि उद्योग से सम्बन्धित चित्र भी पाये गये हैं। राज्य सरकार के पुरातत्व-विभाग के पुरातत्ववेत्ताओं को इस क्षेत्र में खुदाई के दौरान पता चला कि अधिकांश क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल के हैं। खुदाई में फलक और उससे बने हथियारों के अवशेष उन्हें मिले हैं। इनमें से कुछ लघु पाषाण काल के हैं। उनमें कुछ छोटे त्रिशूल, अर्द्ध चन्द्राकार तथा कुछ पूर्ण फलक भी शामिल हैं। लेखनियाँ और लहरियाडीह जिले में कुछ शिलापट्टों की खुदाई में भी ऐसे ही औजार प्राप्त हुए थे। पुरातत्व-वेत्ताओं का कहना है कि राजगढ़ से दो कि० मी० दूर लेखनियाँ पहाड़, छुरिहरवा-नाला, लूसा, दरहावा नाला, सिद्धनाथ की दरी, तथा रामपुर में प्रस्तर काल के कुछ शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि मध्य पाषाण-काल में विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधे इस अंचल में प्रचलित थे।[2]

नव पाषाण काल के सेल्ट (कुल्हाड़ी की तरह के कुछ हथियार) मिले हैं। पुरा तत्ववेत्ताओं के अनुसार इसके पूर्व मिरजापुर जिले में ऐसे हथियार कभी नहीं मिले थे। इन स्थानों पर मानव-पशु-आकृतियाँ, शिकार के दृश्य, कुछ नृत्य-संगीत के दृश्य, कृषि-उद्योग और पशुपालन के दृश्य तथा कुछ पूजा-आराधना के दृश्य भी मिले हैं। मानव की पहुँच के कारण ये चित्र नष्टप्राय हैं फिर भी जो बचे हैं वे प्रागैतिहासिक संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से काफी उपयोगी हैं।

---

1. दे० भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला नामक पुस्तक में विंढमफाल का वर्णन

2. जनवार्ता 26 मार्च, 79, 'पाषाण काल में चुनार में कुटीर उद्योग' शीर्षक लेख

राजापुर—मड़िहान से लगभग 2 किमी० दक्षिण-उत्तर की ओर लिखनियाँ नामक पहाड़ी में एक शैलाश्रय मिला है जिसमें गेरू रंग की बनी मानवाकृतियाँ मिली हैं। यहाँ से लघु पाषाण कालीन कुछ उपकरण भी मिले हैं जो राज्य पुरातत्व संगठन, लखनऊ के संग्रहालय में विवरण के साथ संकलित हैं।

चिरहुली करमडाँड़—कण्डाकोट के नीचे चिरहुली करमडाँड़ ग्राम के पास मन्दिर से दक्षिण-पश्चिम की ओर लगभग 300 मीटर दूर एक शैलाश्रय है जिसमें गाढ़े लाल रंग के तथा कुछ गुलाबी रंग के चित्र बने हैं जिनमें मुख्य हैं–नीचे दाहिने से योद्धा, हाथी के शिकार का दृश्य, बायें से हरिण, हाथी, हस्ति आरोही, कटे हरिण, धनुर्धर, वाण चलाते हुए शिकारी, भीतर की ओर वाण चलाते तीन शिकारी, हाथी, सीढ़ी, त्रिकोणीय चिह्न उसके ऊपर चार शिकारी इसी मुद्रा में।

इस स्थान से 200 मीटर बायें की ओर कुछ और दृश्य-चित्र-हाथी पर सवार शिकारी, इसी प्रकार तीन अन्य शिकारी हाथी पर सवार, कमर में तलवार बाँधे हुए, पास में शिकारी कुत्ता, हाथी, बारहसिंगा आदि मिले हैं और सभी चित्र बड़े सुन्दर हैं। कुछ डेढ़ फीट लम्बे तक हैं।

दुद्धी संभाग

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दुद्धी मिरजापुर का महत्वपूर्ण भू-भाग है। इस क्षेत्र में भी प्रागैतिहासिक काल की चित्रित गुफाएँ मिली हैं जिनके बारे में अभी तक कुछ नहीं लिखा गया है। विद्वानों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ है। यहाँ एक पाण्डव गुफा है जिसके बारे में कहा जाता है कि यह स्थान महाभारत कालीन है। यहाँ पाण्डवों का आवास था। यहाँ 'पाण्डु' नाम की एक नदी बहती है जिसके तट पर बनी प्राकृतिक गुफा में प्रागैतिहासिक काल के चित्र बने हुए हैं। यहाँ शेरों के झुण्ड को एक साथ गोलाकार चक्कर लगाते दिखाया गया है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार कोटा के पास कुएँ की भित्तियों पर हथियार लिये हुए युद्ध की मुद्रा में वीरों का चित्र बनाया गया है। लोरका शिला पर लाल रंग का चौका बनाया गया है। इससे पश्चिम एक स्थान कोहबर के नाम से भी जाना जाता है। कहीं-कहीं अक्षर और अंकों के संकेत-चिह्न भी मिले हैं। मानवाकृतियाँ बिकराल दिखलाई गयी हैं। इसके अतिरिक्त मिरगारानी गोहड़ा, राजा चंडोल, चन्द्रपुर, धुड़गड़ी (रन्नू) काचन ग्राम, वनमहरी (मेताया) ढाँका, छत्तापहरी (वनमहरा से दक्षिण-पूर्व) आदि गुफाएं भी तत्कालीन हैं जिनमें बने चित्र अब नष्टप्राय हैं।

अन्य स्थानों के गुहाचित्र

छत्तीसगढ़ में स्पेन तथा मैक्सिको के सिक्के मिले हैं। कहते हैं मयदानव रावण का श्वसुर मैक्सिको का राजा था और छत्तीसगढ़ का बहुत सा भूभाग उसके अधिकृत था। इससे पता चलता है कि स्पेन, मैक्सिको और छत्तीसगढ़ की संस्कृति में काफी सामञ्जस्य रहा होगा जैसा कि सिक्कों तथा गुहाचित्रों से स्पष्ट होता है।[1]

गुहाचित्रों की दृष्टि से मध्यप्रदेश काफी समृद्ध है। वहाँ अब तक जितनी चित्रित गुफाएँ और शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं उनमें मुरैना जिले के पहाड़गढ़, शिवपुर कला क्षेत्र में प्रागैतिहासिक गुहाचित्रों का पता चला है जिनकी खोज मिशीगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉक्टर डी० वी० एस० द्वारिकेश ने की है। उनके अनुसार 600 गुफाएँ 1500 कि०मी० क्षेत्र में फैली हुई हैं जिनमें शिकारियों, जंगली जानवरों एवं योद्धाओं के चित्र बने हुए हैं। इनका अनुमानित समय 25 हजार वर्ष पुराना बताया गया है।[2] इसी प्रकार भोपाल के समीप पिपल्ला लौरका नामक स्थान में राज्य पुरातत्व विभाग ने जब उत्खनन कराया तो आद्य ऐतिहासिक कालीन सभ्यता का पता चला। खुदाई में कुछ ऐसे मिट्टी के बर्तन मिले जिन पर काले रंग की सुन्दर चित्रकारी है। कुछ बर्तनों पर ज्यामितीय चित्रण हैं जो सागर जिले में एरण नामक स्थान से प्राप्त चित्रों से मेल खाते हैं। पिपल्ला लौरका के बर्तनों पर त्रिकोण, माणिक्यमाल, पंचक तथा पक्षियों के अंकन उल्लेखनीय हैं। मातृकेषी तथा वृषभ की मिट्टी की मूर्तियाँ भी मिली हैं। इनसे स्पष्ट हुआ है कि बेतवा नदीके उद्गम से लेकर एरण तक इस सभ्यता का प्रसार था।[3]

देश-विदेश में चित्रों की खोज जारी है। मीकांग नदी के किनारे पुरातत्व विद्वानों के एक दल को पूर्व पाषाण काल के शिलाचित्र प्राप्त हुएहैं। सिल्पकोर्न विश्वविद्यालय बंकाक के इस दल ने यह खोज खोंग चियाम जिले के पूर्वोत्तर चरनी क्षेत्र में की है। चित्रों बाली ये चट्टाने मीकांग नदी से 50 मीटर ऊँचाईपर स्थित हैं और इनपर लगातार 200 मीटर तक लाल, गहरे, भूरे और काले रंगों से, मनुष्यों, हाथियों, मछलियों और अन्य वस्तुओं तथा रेखागणितीय आकृतियोंके चित्र बने हुए हैं। ये सभी प्रागैतिहासिक

---

1. छत्तीसगढ़ी लोकगाथा और लोक साहित्य का अध्ययन: शकुन्तला वर्मा–पृष्ठ–6
2. नवजीवन, 13 अगस्त 1981
3. मध्यप्रदेश प्राचीन इतिहास के हरावल में : प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी का लेख 'अमृत प्रभात' 8 जुलाई, 1981

कालीन हैं ।[1] पत्थर, गेरू, चर्बी, वृक्षों के दूध और पत्तियों के रस से तैयार किये गये घोल से बने ये चित्र कहीं-कहीं आँधी, पानी, धूप आदि के सीधे प्रभाव में होने के बाद भी अद्यावधि अमिट हैं। पानी से धुल जाने के बाद ये और अधिक चटखीले हो जाते हैं।

दक्षिणी भारत की गुफाएँ—उत्तरी भारत के अतिरिक्त अब दक्षिणी भारत में भी चित्रित गुफाएँ और शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। डाक्टर यशोधर मठपाल के 21 और 27 सितम्बर 1980 के 'दिनमान' में प्रकाशित लेख के अनुसार राजस्थान, गुजरात, केरल, कर्नाटक की भाँति आन्ध्र में भी गुहाचित्रों को प्रकाश में लाने की बारी आयी है। आद्यतन पाषाणकाल से नव पाषाण काल तक की मानव-निर्मित पत्थर, हड्डी, मिट्टी, धातु की वस्तुएँ, उपकरण प्रचुर मात्रा में मिले हैं। डॉ० मल्लादि लीलाकृष्ण मूर्ति ने इस आशय की सूचना दी थी। बेतमचर्ला से 5 कि०मी० दूसरी दिशा में स्थित बीला सरगमकी महागुफाओंमें, ब्रुसफूटे ने लगभग 100 वर्ष पूर्व हड्डी के उपकरणों और आभूषणों की पहली सूचना भी दी। उन्हें काले रंग की कई धूमिल कलाकृतियां, मानवों के प्रतीक चिह्न 6ठीं शताब्दी ईसा पूर्वसे 7वीं शताब्दी ई० पू० तक प्रचलित अलंकारिक शंखलिपि में भी मिले हैं।

पुच्चलताकी गुफा—कनव कडकल्ल बुग्गा बेतम चर्ला से 4 कि०मी० दूर कई गुफाएँ मिली हैं। वहाँ रक्तवर्णी ज्यामितीय आलेखन, दोनों हाथ उठाये लम्बा चोंगा पहने मानव को कंघी के आकार की बाड़ और कटी शाख वाले वृक्ष के मध्य में देखा जा सकता था। इसी प्रकार हाथ देकर पशु को भगाते हुए तीन आदमी, सिर पर सींगों का मुखौटा लगाये, शिकारी बैल की तरह एक विशाल काय पशु उसका सामना करता हुआ, एक अदना सा मानव, तीन मानव नृत्य करते, भागती गाय, छपकते तेंदुए, सींगवाले हिरन, कृषक, मोर, कुत्ता, बारहसिंगा आदि देखे गये, शेष अनेक चित्र नष्टप्राय हैं।

प्रागैतिहासिक कालीन चित्रकला से सार्वभौमिक सत्ता एवं सम्पूर्ण मानवता के एकीकरण की भावना का परिचय मिलता है। भैंसोर क्षेत्र में मिली बिना पहिये की गाड़ी का चित्र, मिरजापुर की चनाइनमान में बने बारहसिंगे का चित्र ध्रुवप्रदेश तक के हमारे सम्पर्क को पुष्ट करते हैं। इतना ही नहीं, पूरब के पशुओं को पश्चिम के देशों में तथा पश्चिमी देशों के पशुओं को पूर्वी देशों के शैलाश्रयों में चित्रित करके हमारे प्राचीन चित्रकारों ने पूरब-पश्चिम के भेद को छोड़कर सम्पूर्ण मानवता के सन्देश दिये हैं।

---

1. अमृत प्रभात 28 मई 1981

पुरा उपकरण

प्रागैतिहासिक कालीन चित्रित शैलाश्रयों, गुफाओं तथा अन्य स्थानों में पुरा उपकरण मिले हैं जिनसे तत्कालीन संस्कृति को जाँचने-परखने में भरपूर सहायता मिल रही है। उत्खनन में अब तक जो उपकरण प्राप्त हुए हैं उनमें मुख्य हैं—कोर, फलक, पेबुल उपकरण, एश्यूलियन, हैंडेक्स, कलीवर, स्क्रेपर, सब स्फेरायड, फ्लेक, ब्लेड, भूथड़े ब्लेड, खुर्चनी, छिद्रक, तक्षणी, जली मिट्टी के टुकड़े, पत्थर के हथौड़े, निहाई, हथगोले, गदाशीर्ष, मिट्टी के वर्तनों के टुकड़े, आरी, वाणाग्र, त्रिभुज-समतल चतुर्भुज, चौड़े धार के वाणाग्र, कुल्हाड़ी, मिट्टी के मनके, घड़े, नाद, औजार तेज करने वाले पत्थर, जानवरों और जीव-जन्तुओं की हड्डियों के बने औजार आदि। मारकुण्डी के पास जीवाश्म भी प्राप्त हुए हैं। प्रागैतिहासिक काल का मानव घासफूस, बाँस और लकड़ी का मकान भी इन सुरक्षित गुफाओं में ही बनात था।

ये उपकरण लेलिसडनी, अगेट, कार्नेलियन चर्ट, अटर्ची आदि पत्थरों का प्रयोग करके बनाये जाते थे। एक शोध के अनुसार 80% उपकरण मध्य पाषाण और 20% उच्च पूर्व पाषाण युगीन हैं।

मिरजापुर में अभी उत्खनन का कार्य भविष्य के गर्भ में है फिर भी सर्वेक्षण के दौरान जो भी उपकरण प्राप्त हुए हैं, उनसे आशाएँ बँधी हैं। शैलाश्रित गुफाओं में प्राप्त चित्रों तथा उपकरणों के आधार पर जो तथ्य सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं—

1—अब तक जो उपकरण अथवा शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए हैं, उनके अधिकतर चित्र इन गुफाओं में बने हैं जिनसे निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

2—अधिकतर उपकरण स्थानीय प्राप्त संसाधनों-प्रस्तर खण्ड, हड्डी आदि से बनाये जाते थे।

3—अधिकतर उपकरण आत्मरक्षा, जीविकोपार्जन, युद्ध, आखेट, गोचारण तथा देवाराधन से सम्बन्धित हैं, जिनके चित्र अद्यावधि गुफाओं में विद्यमान हैं। ●

चौथा अध्याय

मिरजापुर के शैलाश्रित गुहाचित्रों का वर्गीकृत अध्ययन

मिरजापुर में अब तक जितने प्रकार के चित्र पाये गये हैं, उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

1—पशु-पक्षी तथा वन्य जीवाकृतियाँ।

2—मानवाकृतियाँ।

3—आखेट-दृश्य।

4—युद्ध तथा धनुर्धरों के दृश्य चित्र।

5—अश्वारोही, हस्तिआरोही, ऊँटआरोही तथा कुत्ता-गाड़ी के आरोहियों के चित्र।

6—नृत्य-संगीत तथा पूजाराधना के चित्र।

7—नौका-विहार तथा आमोद-प्रमोद के चित्र।

8—बस्ती, ग्राम-निवास तथा गोचारण के दृश्य।

9—कृषि, उद्योग से सम्बन्धित चित्र।

10—अन्य चित्र।

1—पशु-पक्षी तथा वन्य-जीवाकृतियाँ–पशु-पक्षियों तथा अन्यान्य,जीवधारियों का जन्म सृष्टि की संरचना के साथ हुआ होगा। यही कारण है कि ये मानव के आदि सहचर रहे हैं। इनसे मानव मित्रता और शत्रुता दोनों कर सकता है। प्रागैतिहासिक काल के चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का अपने आस-पास के जीवधारियों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि अपने रहने वाले स्थानों पर आदिमानव ने जिन चित्रों का अंकन किया है, उनमें सर्वाधिक संख्या पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों तथा अन्यान्य जीवधारियों की है।

मिरजापुर में भी ऐसे चित्रों की कमी नहीं हैं। बैल, भैंसा, हाथी, घोड़ा, शेर, चीता, सूअर, सामर, भालू, बारहसिंगा, गैंडा, नीलगाय, हरिण, कुत्ता, खरगोश, ऊँट आदि जानवरों के अतिरिक्त जीव-जन्तुओं में सर्प, बिच्छू, छिपकली, मगर, घड़ियाल, मछली, आदि के चित्र भी यत्र तत्र पाये जाते हैं। छिपकली के चित्र कम पाये जाते हैं।[1] बन्दर के चित्र भी प्रायः नहीं मिलते।[2] शेर के चित्र भी कम देखे जाते हैं।

इन पशुओं के चित्रांकन के पीछे आदिमानव की भौतिक भावनाएँ छिपी हैं। विद्वानों का ख्याल है कि ये चित्र आदिमानव की जीवन-शैली पर प्रकाश डालते हैं। आदिम जातियों में पशु-पूजा की प्रथा आज भी प्रचलित है। देवी को सूअर और भैंसे की बलि आज भी चढ़ाई जाती है। हिन्दू नाग को देवता मानते और नागपंचमी के दिन उन्हें लावा-दूध का भोग लगा कर पूजते हैं। इसी प्रकार गाय की पूजा माँ के रूप में की जाती है। हमारे यहाँ गोदान का बड़ा महत्व बतलाया गया है। बैल शंकर जी का वाहन है। अतः उसकी भी पूजा हिन्दू बड़े चाव से करते हैं। पशु पूर्वजों की मृतात्माओं के रूप में ग्रहण किये जाते हैं। हिंस्र-पशु मृत्यु के प्रतीक हैं जब कि क्षुधा-तृप्ति में सहायक पशु मांगलिक भावना के। कुछ जाति के भी प्रतीक हैं और कुछ संधि और संघर्ष के। बहुत से पशुओं के चित्र वैसे ही बना दिये गये हैं। संभव है, उस युग में उन पशुओं का भी कुछ महत्व रहा हो।

मिरजापुर में पशुओं के जो प्रमुख चित्र पाये गये हैं वे हैं–भल्दरिया में घायल सूअर का चित्र; लेखनियाँ में बाराह, हरिण, हाथी, मोर के चित्र, मुखादरी में सूअर, हाथी और हरिणों के चित्र; चनाइनमान में गैंडा, हाथी, सूअर, हरिण, बारहसिंगा और बैल के चित्र; पंचमुखी में गैंडा, बकरी, शेर और हाथी के चित्र; केरवाघाट में गैंडा, कुत्ता, हरिण, सूअर, आदि के चित्र; सोरहोघाट में वन-महिष के चित्र; कंडाकोट में हाथी, बारहसिंगा और हरिण के चित्र।

पंचमढ़ी, होशंगाबाद, रायगढ़, गौरा पहाड़ी और चक्रधरपुर आदि में भी ऐसे चित्र मिले हैं। कुछ जानवरों के चित्र तो पहचान में ही नहीं आते।

---

1. चंबलघाटी में स्थित छिबड़ा नाला के एक शिलाश्रय पर पशु समूहों के बीच छिपकली जैसी आकृति बनी है। भा० प्रा० चि० पृ० 144

2. इस पुस्तक में देखिये भटरिया के चित्रों का विवरण

इन समस्त जीवाकृतियों को देखने से पता चलता है कि पशु भी मनुष्य से प्रेम करते हैं। उनमें भी स्नेह, वात्सल्य, करुणा के भाव निहित हैं, बशर्ते मनुष्य उनके प्रति भी ऐसे भाव रखे और उन्हें क्षति न पहुँचाये।

2—मानवाकृतियाँ—मिरजापुर की प्रायः सभी गुफाओं में मानव की आकृतियां बनी हुई हैं। वह आखेट, युद्ध, नृत्य, पूजा और व्यायाम करते तथा दंड देते हुए प्रदर्शित हैं। मनुष्यों के अधिकतर चित्र समूह में दिखाये गये हैं। इससे पता चलता है कि मनुष्य अधिकतर समूह में ही रहता था। जब उसे पशु-चारण के लिए जाना होता था तभी अकेले होता था।[1]

मिरजापुर की गुफाओं में नग्न मनुष्यों के अधिकतर चित्र मिले हैं। इससे इस बात पर भी विश्वास टिक जाता है कि उस समय तक वह इतना सभ्य नहीं हो सका था कि वस्त्राभूषण का प्रयोग करता।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार मानव का जन्म पशुओं के बाद हुआ है।[2] पहले जीव-जन्तुओं का ही जन्म हुआ। मिरजापुर की प्रायः सभी गुफाओंमें पशु और मनुष्य दोनों साथ-साथ चित्रित हैं। इन गुफाओं में जो मानवाकृतियाँ मिलती हैं वे दो प्रकार की हैं (1) रेखाचित्र के रूप में, (2) पूरित शैलीमें छापे के रूप में। अधिकांश चित्र ऐसे हैं, जिनमें मानव की आकृति का आभास मिलता है, आँख, कान, नाक, मुँह आदि अलग से नहीं दिखाये गये हैं[3]। बाल है तो सिर पर, अन्य अंगों में नहीं, हैं भी तो इतने सूक्ष्म कि दिखलाई नहीं पड़ते। मिरजापुर में सोरहोघाट में बैठे हुए मानव की आकृति कोहवर, (घोरावल, मुखादरी) हाथी पर बैठे, युद्ध करते तथा शिकार के लिए तत्पर मानव की आकृति, चनाइनमान में वाण प्रहार करते, सीताकुण्ड में हरिण को दौड़ाकर तीर से मारते, लेखनियाँ में नृत्य आदि करते, हाथ उठाकर हाँका करते, नाचते-गाते, ढोल बजाते और भागते, बकरी चराते, चनाइनमान पश्चिम में नौका-विहार करते, विजयगढ़ में चारों ओर से घेरकर गैंडे को तीर से मारते दिखाया गया है। इन सब बातोंसे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य आखेट और युद्ध करने के साथ ही साथ पशु-चारण भी करता था। मुखादरी में बस्ती का चित्र इस बात की ओर

---

1. दे० लेखनियाँ (राजपुर) संभाग में एक व्यक्ति द्वारा बकरी चराने का दृश्य-चित्र

2. दि ओल्ड स्टोन एज, बरकिट, पृष्ठ–210

3. सोनघाटी संभाग में विजयगढ़ की गुफा में गैंडे के शिकार का दृश्य तथा लेखनियां में योद्धाओं के दृश्य

संकेत है कि परवर्तीकाल में वह थोड़ा-बहुत खेती करने और उद्योग धन्धा करने में भी रुचि लेने लगा था। अभी हाल में चुनार के पास राजगढ़ में जो चित्र मिले हैं, उनसे भी प्रतीत होता है कि उस समय लघु तथा कुटीर उद्योग किये जाते थे।

3—आखेट दृश्य—मानव अपनी आरंभिक अवस्था में जंगली जानवरों का शिकार करके अपनी जीविका चलाता था। आखेट के दृश्य इसीलिए सबसे प्राचीन माने जाते हैं। ऐसे दृश्य न केवल मिरजापुर की गुफाओं में, अपितु अफ्रीका, यूरोप तथा आस्ट्रेलिया आदि देशों में भी उपलब्ध हैं[1]। ऐसे चित्र इस बात के प्रतीक हैं कि आदिम मानव आत्मरक्षा तथा उदरपूर्ति के लिए जानवरों का शिकार किया करता था।

मिरजापुर में आखेट के दृश्य प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। भल्दहिया, लोहरी, बिढमफाल, घोड़मांगर, लिखनियाँ, अहरौरा, पंचमुखी, चनाइनमान, मुक्खा, की दरी, सीताकुण्ड में ऐसे चित्र अधिक पाये गये हैं।

मिरजापुर में आखेट के दृश्य प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। आखेटक नंगे होते थे। वे जानवरों का शिकार तीर-कमान से करते थे। कभी-कभी तो घेरकर (हाँक कर के) वे जानवरों को मारा करते थे और कभी दौड़ा कर छोटे जानवरों को मारते थे। चनाइनमान, रौंप, केरवाघाट, विजयगढ़ में गैंडे का आखेट, कण्डाकोट में सामर का आखेट, लिखनियाँ में बारहसिंगा का आखेट, ढोकवा महरानी में शाही का आखेट, केरवाघाटमें महिष का आखेट, लोहरी में मशाल लेकर बाघका आखेट, कण्डाकोट लिखनियाँ, मुखादरी, चनाइनमान, छातुग्राम में हाथी का आखेट तथा बिढम में पशुओं के बीच आखेटक का दृश्य तथा सोरहोघाटमें बारहसिंगे के आखेट के दृश्य दिखाये गये हैं। छोटे जानवरों के आखेट के दृश्य तो प्रायः सब जगह दिखाये गये हैं।

4—युद्ध के दृश्य : धुनुर्धर योद्धाओं के दृश्य—युद्ध और प्रेम मानव की सहजात प्रवृत्तियाँ हैं। आदिमानव भी इनसे रहित नहीं था। वह घातक जानवरों से संघर्ष करता था और कभी स्थिति ऐसी भी आती थी कि उसे अन्य मानव से भी संघर्ष करना पड़ जाता था। आखेट के दृश्य भी एक प्रकार से युद्ध के ही दृश्य हैं। सर्वप्रथम गार्डन महोदय ने ऐसे दृश्यों की खोज की और उन्हें पाँचवीं शती से लेकर दसवीं शती तक के बीच विद्यमान होना सिद्ध किया। उन्होंने पंचमढ़ी की गुफा का एक छाया-चित्र भी प्रस्तुत किया। ऐसे दृश्य होशंगाबाद में भी बहुतायत से मिलते हैं[2]।

---

1. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला, डॉ० जगदीश गुप्त, पृ० 101

2. सा० क० वॉ० 5, नं० 10, पृष्ठ–584

धनुर्धरों के चित्रों की प्रायः सब जगह अधिकता है। लगता हैं, धनुष-वाण उस समय का प्रमुख शस्त्र था। उससे प्रायः जानवरों का शिकार किया जाता था। वैसे कुल्हाड़ी बरछे, भाले आदि का भी प्रयोग होता था। हाथी पर सवार होकर जब युद्ध किया जाता था तो प्रायः भाले का ही प्रयोग किया जाता था। धनुष-वाण का प्रयोग मनुष्य की नितान्त आदिम अवस्था का परिचायक है। महाभारत तथा रामायण काल में इसका पूर्ण विकास हुआ। धनुर्धरों के चित्र योरोप, अफ्रीका, स्पेन तथा रोडेशिया में भी पाये गये हैं। ऋग्वेद तक में धनुष-संधान की कला का उल्लेख हुआ है। इस तरह यह एक ऐसी विद्या है जो सृष्टि के आदि में भी प्रचलित थी और वह आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। आदिवासी आज भी इसी तीर-कमान से शेर तक को मार गिराते हैं। आर्य भी इस कला में दक्ष थे।

अन्य स्थानों पर धनुर्धरों के चित्र प्रायः कम मिलते हैं। सिंघनपुर तथा कबरा पहाड़ में ऐसे चित्रों का अभाव ही है। इसके विपरीत होशंगाबाद और पंचमढ़ी में ऐसे चित्रों की अधिकता अवश्य है।

जहाँ तक मिरजापुर का सम्बन्ध है, धनुर्धरों के चित्रों की कमी नहीं है। सीताकुण्ड, पंचमुखी (रौंप) चनाइनमान, केरवाघाट, लिखनियाँ आदि स्थानों में ऐसे चित्र पाये गये हैं। कोहबर तया लिखनियाँ में गजारोहियों के हाथ में ढाल, कृपाण तथा भाले भी दिखाये गये हैं। मुक्खा की दरी में युद्ध के दृश्य बड़े ही सजीव रूप में चित्रित हैं। लिखनि ाँ में योद्धाओं के समूह-चित्र पाये गये हैं। वे कुछ फेंक कर विपक्षी को मारते, हाथा-बाहीं करते, सिर काटते, दोनों ओर से वाण-संधान करते, मार कर गिराते, लड़ते, भागते, पीछा करते चित्रित हैं।

युद्ध की विभिन्न मुद्राएँ दिखायी गयी हैं। युद्ध करते योद्धाओं की पोशाक भी अलग ढंग की है। कुछ स्त्री योद्धाओं के चित्र भी देखे गये। लगता है, उन दिनों आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियाँ भी मैदाने जंग उपस्थित हो जाया करती थीं।

5—अश्वारोही तथा अन्य आरोही—हाथी और घोड़ा दो ऐसे पशु हैं, जिन पर सवारी की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित है। डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार आरोहण के सभी चित्र नव-पाषाण-काल के हैं।[1] योरोप में अश्वारोहण का आरंभ 2000 ई० पू० के आसपास माना जाता है। कुछ विद्वान घोड़े को पालतू बना कर सवारी और अन्यान्य कार्यों में उसका उपयोग किया जाना किसी भी स्थिति में 1000 ई० पू० से पहले नहीं मानते।

---

1. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्र कला, पृष्ठ—301

अश्वारोहण या अश्व-चित्रण पंचमढ़ी, होशंगाबाद, सागर, भोपाल, बाँदा और मिरजापुर में अधिक प्राप्त हुए हैं। हाथी और हरिण के चित्र प्रायः सब जगह हैं। युद्ध के दृश्यों के साथ प्रायः हाथियों पर सवार व्यक्तियों के चित्र कोहबर (घोरावल), चनाइनमान, लिखनियाँ, कंडाकोट तथा पंचमुखी में मिलते हैं। भल्दरिया में भी ऐसा ही एक चित्र मिला है, जिसका प्रथमतः उल्लेख घोस के मोनोग्राफ में हुआ है। गार्डन महोदय के विचार से शत्रुओं को पराजित करने के लिए जिन युद्धों में ऐसे अश्वों के आरोहियों ने अपनी सेना-सहित भाग लिया होगा, वे उस भू-भाग में हुए होंगे जो निश्चित रूप से उन पहाड़ियों से भिन्न होगा, जिनमें ये चित्र अंकित हैं। गज और गजारोहियों के विषय में भी गार्डन की यही धारणा है।[1]

कुछ चित्रों के अश्वारोही निर्वसन हैं तथा कुछ के परिधान में भी हैं। नग्न व्यक्तियों वाले चित्र अपेक्षाकृत अधिक पुराने प्रतीत होते हैं। उनके एक हाथ में कोई अस्त्र है तथा दूसरे में लगाम।

मिरजापुर में अश्वारोही का एक चित्र महड़रिया में है जिसकी बड़ी आकर्षक और स्वाभाविक मुद्रा है। इसी तरह लिखनियाँ में सशस्त्र अश्वारोहियों का अंकन हुआ है। कोहबर में आरोही युग्म दिखाए गए हैं। आरोही पीठ पर खड़े हैं। हाथी पर तो दो-तीन आदमी तक बैठे दिखाए गये हैं।

नृत्य, संगीत तथा पूजाराधना के चित्र—इन गुफाओं के अन्य प्रकार के दृश्यों में पारिवारिक दृश्य, नृत्य-वाद्य की मुद्रा वाले द्रृश्य, पूजा के प्रतीकदृश्य तथा अग्नि प्रयोग, पात्र-निर्माण, आदि के चित्र तो पाये ही जाते हैं, किंतु इनमें नृत्य-वाद्य की मुद्रा वाले चित्रों की अधिकता है। उस युग का मानव अपना मनोरंजन नृत्य वाद्य के द्वारा करता था। नृत्य के आयोजनों में स्त्री-पुरुष दोनों सम्मिलित होते थे। इनसे हाथ-पाँव के संधान द्वारा कलात्मक भावना का परिचय मिलता है। नर्तकों के हाथों में वाद्य-यन्त्र हैं। उनकी कुछ मुद्राएँ तो सचमुच बड़ी ही भावात्मक और आकर्षक हैं। ऐसा लगता है कि उस समय तुरही जैसे लंबे भोंपो और ढोल आदि वाद्य-यन्त्रों का खूब प्रयोग होता था। ढोल बजाते स्त्री-पुरुष अधिक चित्रित हैं। लगता है, उस समय का मानव जब नाचने की मुद्रा में होता था तो सुध-बुध खो बैठता था।

नृत्य और वाद्य के अधिकतर दृश्य-चित्र लिखनियाँ (राजपुर) और चनाइनमान में देखे गये। लिखनियाँ में चार से लेकर सात व्यक्तियों तक को पंक्तिबद्ध होकर एक

---

1. सा० क० वाँ० नं० 10, पृष्ठ 578 तथा प्रि० वे० ई० क०, पृ०–105

साथ नाचते हुए प्रदर्शित किया गया है[1]। यहाँ के चित्र 6–7 इंच लंबे हैं। नर्तक हाथ उठाये हुए हैं और उनके हाथों में कोई न कोई वाद्य-यन्त्र है। इसी प्रकार चनाइनमान में पालवाली नाव का जो चित्र मिला है, उसमें भी चार-पाँच स्त्रियों को एक साथ नृत्य करते दिखाया गया है।[2] चनाइनमान की गुफा में अप्सरा का जो चित्र मिला है उससे भी ऐसा लगता है कि उस समय नर्तकियाँ होती थीं जो किसी विशिष्ट अवसर पर जैसे बलि या पूजा पर, विशेष नृत्य प्रस्तुत करती थी।[3]

इसी प्रकार पूजा-नृत्य के चित्र भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। चनाइनमान संभाग में एक बहुत ही कलात्मक चित्र बना है। उससे भी लगता है कि स्त्री-पुरुष विशेष अवसरों पर मिल-जुलकर नृत्य करते थे। सोरहोघाट में भी एक स्त्री द्वारा पूजा-नृत्य करने का दृश्य-चित्र मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मानव पशुओं, वृक्षों तथा वन के विशिष्ट देवी-देवताओं की पूजा किया करता था। वह प्रकृति का भी अनन्य पुजारी था क्योंकि लिखनियाँ में ही सूर्य या चन्द्रमा का चित्र भी देखा गया है। स्वस्तिक के चिह्न[4], हथेली के थापे (निशान),[5] चौक तथा वेदिका के चित्र भी उस समय के मानव की धार्मिक भावना के द्योतक हैं।[6] संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल का मानव पूजा, नृत्य और वादन में रुचि लेता था और उसे ईश्वरीय सत्ता का भी यत्किंचित् आभास था।

7—नौका विहार तथा आमोद-प्रमोद के दृश्य—ऊपर की पंक्तियों में लिखनियाँ और चनाइनमान के पूजा एवं नृत्य के चित्रों का उल्लेख किया गया है। उनमें पाल वाली नाव के जिस चित्र का उल्लेख किया गया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानव नाव से यात्रा भी करता था। यात्रा में मनोरंजन के लिए आमोद-प्रमोद या नृत्य का आयोजन होता था। केरवाघाट की गुफा में नौका-यात्रा का जो चित्र मिला है वह भी इसी भावना का प्रतीक है। अन्य स्थानों पर नौका-यात्रा के चित्र प्रायः नहीं मिलते। भल्दरिया में आमोद-प्रमोद के चित्र मिले हैं जिनका यथास्थान उल्लेख किया गया है।

---

1. दे० लिखनियां संभाग का चित्र सं० 13, 14
2. चनाइनमान का चित्र फ० 5 व 6
3. चनाइनमान चित्र फ० 6
4. दे० पंचमुखी संभाग का चित्र
5. दे० मुखादरी संभाग का विवरण एवं कण्डाकोट का चित्र फ० 2
6. दे० चनाइनमान पूरब के चित्र फ० 11 एवं अल्पना डिजाइनें

8—बस्ती, ग्राम-निवास तथा गोचारण के दृश्य—मिरजापुर में जितने चित्र प्राप्त हुए हैं, उनमें मुखादरी में ही ऐसे चित्र मिले हैं जिनसे प्रतीत होता है कि उस समय तक मनुष्य बस्तियाँ बनाकर रहने लगा था, क्योंकि उसमें एक झोपड़ी और झोपड़ी के सामने पशुओं के चरते रहने का दृश्य-चित्र बना है। ऐसा भी लगता है कि बस्तियों में मनुष्य रहता था और आवश्यकता पड़ने पर अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए दूसरी बस्ती के व्यक्तियों से युद्ध या संघर्ष भी कर बैठता था। शिकार और पशुओं के लिए आपस में युद्ध होते थे। चुनार में राजगढ़ के पास कुछ ऐसे चित्र भी मिले हैं जिनसे लगता है कि मनुष्य कृषि तथा छोटे-मोटे उद्योग भी उस समय तक करने लगा था।

9—अन्य चित्र—इन समस्त प्रकार के चित्रों के अतिरिक्त कुछ और भी चित्र मिले हैं, जिनसे तत्कालीन समाज के रहन-सहनपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन चित्रों में चनाइनमान का पति-पत्नी की आपसी वार्ता का चित्र उस समय के पारिवारिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है।[1] इसी प्रकार अग्नि-प्रयोग, पात्र-निर्माण, नौका-नयन, मधु-संचय, आदि से सम्बन्धित चित्र भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। चनाइनमान पश्चिम की एक शिला पर स्त्री-पुरुष के साथ एक बच्चे का चित्र भी मिला है।[2] केरवा पहाड़ में बोझा ढोने, नाव द्वारा नदी पार करने और लिखनियाँ में पालकी द्वारा यात्रा करने के जो चित्र मिले हैं वे भी अपना महत्व रखते हैं। पंचमुखी के पास जो शंख लिपि मिली है, वह अपने में बेजोड़ है और भारतीय लिपि-विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[3]

कुछ अन्य प्रकार के पारिवारिक चित्र मैथुन, प्रसाधन, आलिंगन, चुम्बन, शिशु-पालन, रक्षा तथा सेवा-भावना से सम्बन्धित हैं। ऐसे चित्र मिरजापुर में केरवा घाट, लेखनियाँ (राजपुर), कोहबर (मुखादरी), पंचमुखी तथा चनाइनमान की गुफाओं में मिले हैं। चनाइनमान का वह चित्र भी बड़ा अनूठा है जिसमें पालकी में दुल्हन को बिठा कर ले जाने का दृश्य अंकित है। ऐसे चित्र इस बात के भी प्रतीक हैं कि मनुष्य उस समय तक अपने विभिन्न संस्कारों के बारे में भी सचेत होने लगा था। केरवाघाट तथा कुछ अन्य गुफाओं में सीढ़ी का चित्र भी मिला है। इससे पता चलता

---

1. चनाइनमान संभाग का चित्र फ० 7

2. वही, अप्सरा का चित्र फ० 4

3. पंचमुखी और चनाइनमान पूरब के बीच का एक चित्र फ० 1

है कि आदमी युक्ति पूर्वक किसी ऊँचाई पर चढ़ने का अभ्यस्त हो चुका था। मशाल के रूप में अग्नि-प्रज्ज्वलन के तथा त्रिशूल के चित्र भी पंचमुखी की गुफाओं में मिले हैं। यहाँ गुणित, धन, शून्याकार, तथा अन्य ज्यामितीय डिजाइनें भी देखने को मिली हैं। चनाइनमान में चौका पूरने का दृश्य महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार कुत्ता गाड़ी, सामर, सूअर, अग्नि, औजार, घर, वस्त्र और चमड़ा आदि सुखाने के चित्र भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इन चित्रों को नव्य पाषाण काल का कहा जा सकता है। मनुष्य द्वारा साधन के रूप में अग्नि के प्रयोग का प्राचीनतम प्रमाण अफ्रीका में मिलता हैं।[1] डॉ० जगदीश गुप्त का विचार है कि ऐसे चित्र मिरजापुर में अभी नहीं मिले हैं जिनसे अग्नि-प्रज्वलन का संकेत मिलता हो। नौकानयन का भी चित्र भारत में प्राप्त नहीं हुआ था। पंचमढ़ी में इस तरह के कुछ चित्र मिले हैं। संक्षेप में कहा जा सकता हैं कि मिरजापुर के चित्रों में काफी विविधता है और यहाँ के अधिकतर चित्र विदेशों में मिलने वाले चित्रों की तुलना में अधिक पुराने तथा प्रागैतिहासिक संस्कृति के जीवन्त प्रमाण हैं।

---

1. प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ, पृ० 36, 40

पाँचवाँ अध्याय

गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन

वैसे तो अफ्रीका, फ्रांस, आदि देशों में भी गुहाचित्र मिले हैं और उनके अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ है, किन्तु भारत में प्रागैतिहासिक काल के चित्रों की अपेक्षाकृत अधिकता है। इस तरह के चित्र विन्ध्याचल की गुफाओं में अधिक मिले हैं। डॉ० जगदीश गुप्त ने मिरजापुर-क्षेत्र, रायगढ़-क्षेत्र, पंचमढ़ी-क्षेत्र, होशंगाबाद-क्षेत्र, मध्य प्रदेश के अन्य क्षेत्र, रायसेन-क्षेत्र, सागर-क्षेत्र, रीवाँ-पन्ना-छतरपुर-क्षेत्र, कटनी और नरसिंहपुर-क्षेत्र, ग्वालियर और चंबलघाटी-क्षेत्र तथा बाँदा-क्षेत्र के गुहा-चित्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया है और उनका तुलनात्मक अध्ययन करने का भी यत्न किया है।[1] इन क्षेत्रों में जितने प्रकार के चित्र उन्हें प्राप्त हो सके हैं उनमें आखेट-दृश्य, पशुपक्षियों तथा अन्य जीवधारियों के चित्र, मानवाकृतियाँ, धनुर्धरों, योद्धाओं, अश्वारोहियों, हस्ति-आरोहियों के चित्र, युद्ध-दृश्य, परिवार दृश्य, नृत्य-वाद्य तथा पूजा-प्रतीक के दृश्य एवं अन्य प्रकार के दृश्यों में अग्नि-प्रयोग, पात्र-निर्माण, नौकानयन मधु-संचय: पशु-पालन और कृषि-कार्य, पहियाहीन और पहियेदार गाड़ियाँ, काँवर या बहंगी तथा अन्य प्रकार के चित्रों का उल्लेख है।[2] उन्होंने मिरजापुर-क्षेत्र से बिढमफाल,कोहबर, लेखनियाँ, लोहरी,खोड़हवा, भल्दरिया, महड़रिया, दरीवाले बाबा, रौंप, बसौला, ढोकवा महरानीं, भैंसोड़ कंडाकोट, सोरहोघाट, विजयगढ़ घोड़मांगर, चुनार और मोरहना आदि स्थानों के कतिपय प्रमुख चित्रों का नामोल्लेख किया है अथवा उनका विवरण प्रस्तुत किया है।[3] इसके विपरीत एक अन्य विवरण के अनुसार मिरजापुर क्षेत्र के अन्तर्गत सहबइया पथरी, मुरहना पथरी, बागा लकहट पथरी, नामक पहाड़ियों पर चित्रित गुफाओं का उल्लेख किया गयाँ है।[4]

---

1. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला, पृ०-1, 2
2. वही, पृ० 2, 3
3. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला डॉ० जगदीश गुप्त, पृ०-59
4. सम्मेलन पत्रिका, कला विशेषांक, 1958

यद्यपि, इनका अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं मिलता। डॉ० एच० गार्डन ने लखनियाँ, कोहबर, महरेरिया, भल्दहिया, विजयगढ़ आदि के चित्रों की तुलना महादेव पहाड़ियों के सिंहनपुर और कावरा पहाड़के गुहाचित्रों से की है। उन्होंने उदाहरण के लिए प्रमुख रूप से आखेट और नृत्य के चित्रों को ही लिया है। मिरजापुर के अन्य स्थानों के अनेक चित्र छूट गये हैं।[1] डॉ० जगदीश गुप्त ने पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उद्धृत चित्रों के बारे में ही विस्तार से लिखा है। मधु संचय के दृश्य मानिकपुर के चारों ओर तथा उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के सारहट, करपटिया तथा मालया में मिलते हैं। ये चित्र सिलवेराड द्वारा प्रचलित और लिखित हैं। महादेव पहाड़ियों के चित्र तृतीय चक्र के हैं। घुड़सवार और धनुषधारी के चित्र कुछ विद्वानों के अनुसार प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के या बाद के हैं। मधु-संचय और घुड़सवारों के चित्र मिरजापुर की इन पहाड़ियोंमें कम मिलते हैं। आखेट के दृश्य अधिकता से मिलते हैं। आखेट प्रायः पैदल ही अथवा हाथी पर चढ़कर किये गये हैं। हरिण आदि को दौड़ा कर मारते हुए दृश्यों के चित्र भी रोमांचकारी हैं।

काक्वर्न ने कैमूर रेंज के चित्रों पर अच्छा प्रकाश डाला है।[2] उन्होंने कई तरह के चित्रों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार तथा डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार भी प्रागैतिहासिक चित्रों की दृष्टि से यह भू खंड (भारतवर्ष के मध्यवर्ती भाग में विन्ध्याचल पर्वतमालाओं तथा उनसे संलग्न सतपुड़ा और मेकल पर्वत की श्रृंखलाओं तक) सबसे अधिक सम्पन्न सिद्ध हुआ है। नदी-घाटियों में सोन, भल्दरिया, नर्मदा, चम्बल, बेतवा, केन, स्वर्णरेखा, संजाई, महानदी आदि के गहन-गह्वरों और सघन वनों से युक्त घाटियाँ भारत के इसी मध्य भाग में आती हैं। अज्ञात काल से इस महा पुरातन पर्वतीय प्रदेश में इन नदियों तथा इनकी सहायक धाराओं द्वारा तटों को काटने से जो चट्टानें प्राकृतिक रूप में निर्मित हो गयी हैं, उनमें मानव अस्तित्व का कितना समृद्ध एवं रहस्यपूर्ण इतिहास सन्निहित है, इसकी खोज अभी प्रारंभिक अवस्था में ही है।[3] इस क्षेत्र के गुफाचित्रों की ओर प्रथम बार ध्यान आकृष्ट कराने वाले विद्वान हैं कार्लाइल तथा काक्वर्न। इन विद्वानों द्वारा किये गये ध्यानाकर्षण

1. भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि, डॉ० एच० गार्डेन, पृष्ठ 129

2. काक्वर्न, जे० के० इन द कैमूर रेंज, जर्नल आव द रायल एशियाटिक सोसाइटी 1899 ई०

3. वही, तथा प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, डॉ० गुप्त, पृष्ठ 62

के बाद अबतक जितना भी कार्य हुआ है, वह यद्यपि सराहनीय है, तब भी सम्भावनाएँ अभी बहुत हैं।

रायगढ़ के गुहाचित्र : मिरजापुर के चित्रों के संदर्भ में—रायगढ़ से लगभग 30 किलोमीटर दूर बसनाझर गाँव के निकट एक विशाल पर्वत श्रेणी में लगभग 3 हजार फीट की ऊँचाई पर कतिपय चित्रयुक्त शैलाश्रय मिले हैं। ये चित्र उत्तर पाषाण युग के हैं और लगभग 10 हजार वर्ष पुराने प्रतीत होते हैं। ये तत्कालीन मानव की कला-अभिरुचि, सांस्कृतिक जीवन एवं उनकी आकांक्षाओं के प्रतीक हैं।[1]

इसी क्षेत्र में सिंघनपुर, कबरा पहाड़ तथा ओगना में भी ऐसे शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। इनमें से बसनाझर के शैलाश्रय अधिक स्पष्ट, मुखर तथा भावात्मक हैं। कालानुसार इन शैलाश्रयों के चित्रों को सिंधनपुर, ओगना और कबरा पहाड़ के चित्रों से पूर्व का माना जा सकता है।

ये चित्र भी गेरू के बने हैं जिनमें अधिकतर जंगली भैंस, बन्दर, हाथी, बनबिलाव आदि के अंकन हैं। हिरण का आखेट करता घोड़े पर सवार व्यक्ति का चित्र भी दिखाया गया है। एक-दो चित्र आदिमानव की नृत्य-मुद्रा के हैं। कैमूर-घाटी में ऐसे चित्र लिखनियाँ, पंचमुखी तथा सीताकुण्ड में प्राप्त हुए हैं। आखेट के चित्र अधिक पुराने प्रतीत होते हैं। सीताकुण्ड में हिरण का आखेट करते व्यक्ति को दिखाया गया है, किन्तु वह घोड़े पर सवार नहीं है, पैदल ही पीछा कर रहा है। लिखनियाँ, कंडाकोट, सोरहोघाट, ढोकवा महरानी की गुफाओं में पूजा-नृत्य के चित्र प्राप्त हुए हैं जो प्रायः समूह चित्र हैं।

रायगढ़ में जानवरों की कुछ अन्य आकृतियाँ भी हैं जो पानी के बहाव के कारण धुँधली पड़ गयी हैं। सभी चित्र करीब 300 फीट घेरे के अन्दर अंकित हैं और इलाके के दुर्गम होने के कारण ही सुरक्षित भी हैं।

पर्वत के जिस ओट में ये शैलाश्रय बने हैं, उसके 3 हजार फीट नीचे हरियाली से भरी एक सुन्दर घाटी है, जिसमें जंगल, खेत तथा पहाड़ के दूसरी ओर बसा भालूकोना नामक ग्राम भी है। पूरा वातावरण प्राकृतिक दृष्टि से मनोरम है।

ग्वालियर के चित्र : मिरजापुर के संदर्भ में—ग्वालियर में गुप्तेश्वर उपत्यका तथा जड़ेरूवा नामक दो स्थान अब तक ऐसे मिले हैं, जहाँ मध्य या पुरा-पाषाण-युगीन

---

1. स्वतन्त्र भारत दैनिक, लखनऊ, 22 जून, 1977, पृष्ठ 8

शैलाश्रय तथा शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए हैं। ये शस्त्रास्त्र अनुमानतः 20-25 हजार वर्ष पुराने हैं। जड़ेरुवा में डॉ० ब्रजवासीलाल के अनुसार तीसरी शती ई० पू० का लोहे का हँसिया प्राप्त हुआ है। यहीं दूसरी शती ई० पू० की पक्की ईंटों के बने कमरों का एक भाग भी प्राप्त हुआ है।[1]

गुप्तेश्वर के शैलाश्रय में गेरू से बने सींगों वाले बैल के चित्र मिले हैं, जिन्हें 4 हजार ई० पू० का बताया गया है। इसके अलावा लाल रंग के मिट्टी के बर्तन तथा गाय, बैल, हिरण और बन्दरों के चित्र भी मिले हैं। एक चित्र में एक व्यक्ति बहुनुकिये अस्त्र द्वारा एक पशु का शिकार कर रहा है। यह स्थान तिधरा बाँध से पश्चिम की ओर लगभग 13 कि० मी० दूर है। ये चित्र भी कैमूर घाटी के चित्रों से मिलते-जुलते हैं। आखेट के ऐसे चित्र यहाँ सीताकुण्ड, पंचमुखी, केरवाघाट, लिखनियाँ आदि में प्राप्त हुए हैं। कुछ चित्र तथा शस्त्रास्त्र नये अवश्य हैं।

मिर्जापुर के संदर्भ में भीम बैठका और कैमूरघाटी के गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन—होशंगाबाद से भोपाल जाते समय उबेदुल्लागंज रेलवे-स्टेशन से दक्षिण की ओर एक पहाड़ी है। मध्य प्रदेश की इस पहाड़ी का नाम भीम बैठका है। इस स्थान का नाम महाभारत के पात्र भीम से सम्बद्ध है। कहते हैं, यहीं भीम बैठा करते थे। भीमपुर और पंडापुर (पाण्डवपुर) नाम के दो गाँव भी पास ही में हैं। स्पष्ट है कि इन पहाड़ियों का पुरातत्व की दृष्टि से तो महत्व है ही, सांस्कृतिक पौराणिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी कम महत्व नहीं है।

इस पहाड़ी में सैकड़ों गुफाएँ हैं, जिनमें प्रागैतिहासिक काल के आदि मानवकी कला-भावना के द्योतक हजारों सुन्दर, सुडौल, चिह्न बने हुए हैं। ये चित्र अधिकतर सूअर, रीछ, तेंदुआ, लकड़बग्घा, नील गाय, सांभर, हाथी, गैंडा, चीता, बैल, भैंसा तथा घोड़ा आदि के हैं। हाथी-घोड़े सजे हुये और दौड़ते हुए दिखाये गये हैं। आदमी नंगे हैं। वे घोड़े को रस्सी में बाँध कर लिये चले जा रहे हैं। उनकी कमर में कुछ बँधा है, सिर पर बड़े-बड़े बिखरे बाल हैं। वे बायें हाथ से घोड़े को सँभाले हुये हैं तथा दूसरे हाथ में धनुष-बाण लिये हैं। बाणों की संख्या 3 है। एक दूसरे आदमी का चित्र भी बना है जिसके हाथ में गँड़ासा जैसा कोई शस्त्र है। इसी प्रकार एक घुड़सवार घोड़े को दौड़ाता हुआ जा रहा है। एक दूसरा आदमी घोड़े को लेकर पैदल चल रहा है। इस

1. क्या ग्वालियर में आदिमानवों की बस्ती थी ? डॉ० ब्रजवासीलाल, धर्मयुग, 2 जनवरी, 1977, पृष्ठ 30-31

तरह घुड़सवारों को पूरी पंक्ति चित्रित है और हर घुड़सवार के हाथ में कोई न कोई आयुध है। एक अन्य स्थल पर गाय-भैंसों को चराता हुआ एक चरवाहा दिखाया गया है। वह लाठी लिये किसी शिला पर बैठा है। इसी प्रकार युद्ध के दृश्य भी चित्रित हैं। यहाँ के चित्रों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1—इन गुफाओं के अधिकतर चित्र रंगीन (पेंटेड) हैं। रेखा चित्रों की संख्या कम है। कैमूरघाटी के चित्र दोनों प्रकार के हैं। कैमूर की घाटियों में जो चित्र मिले हैं, उनमें घुड़सवारों की संख्या कम है। घुड़सवार का एक चित्र अहरौरा संभाग में भल्दरिया में देखा गया।[1]

2—भीम बैठका में चित्रित आदमी अधिक प्राचीन काल के प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनको पूँछ आदि भी दिखायी गयी हैं। मिरजापुर के केरवाघाट में भी ऐसे चित्र मिले हैं किन्तु उनकी संख्या कम है। भीम बैठका के चित्रों में गतिशीलता अधिक है जबकि कैमूरघाटी के चित्रों में वह अपेक्षाकृत कम है।

3—भीम बैठका में स्वस्तिक, देवी-मूर्ति, दीपक आदि के चित्र नहीं बने हैं, किन्तु मिरजापुर में ऐसे चित्र यत्र-तत्र मिलते हैं।

4—कैमूरघाटी के चित्रों में युद्ध-कला को विकसित दिखाया गया है। इसी प्रकार शिकार खेलने के दृश्य भी अधिक हैं। इसके विपरीत भीम बैठका के चित्र युद्ध या आखेट-प्रधान नहीं हैं।

5—मिरजापुर के चित्रों में पशु-पालन का दृश्य लिखनियाँ में ही मिलता है। जबकि भीम बैठका में ऐसे कई चित्र उपलब्ध हैं।

6—भीम बैठका की गुफाओं का उत्खनन हुआ है जिसमें उस काल के मानव के हथियार, औजार, अस्त्र-शस्त्र और पाषाण-उपकरण-गेंद के आकार के भी प्राप्त हुए हैं। खोदने, चीरने, काटने के कार्यों में प्रयुक्त होने वाले कुछ औजार भी मिले हैं जिनके आधार पर तत्कालीन संस्कृति को विद्वानों ने 3 लाख वर्ष पुरानी तक माना है।[2] डॉ० वीरेन्द्रनाथ मिश्र के अनुसार भीम बैठका की सबसे बाद की संस्कृति के युग को मध्य पाषाण काल कहते हैं। इस संस्कृति के उपकरण चर्ट, जैस्पर,

---

1. दे0 अहरौरा संभाग भल्डरिया चित्र फ० 15

2. भीम बैठका की गुफाओं के रहस्य, डॉ० वीरेन्द्रनाथ मिश्र, धर्मयुग, 30 सितम्बर, 1973

बकालसेडनी जैसे चिकने पत्थरों से बने हुए हैं। ये सूक्ष्म आकार (1 से 4 सेमी॰) के पतले व लेवे फलकों पर बनाये गये हैं। इन फलकों के एक या अधिक किनारों को भोथर बनाकर, उन्हें लकड़ी या हड्डी में एक या दोनों ओर लम्बी नली बनाकर एक पंक्ति में चुन् दिया जाता था। इस प्रकार तीर, भाले, चाकू और हँसिये तैयार किये जाते थे। इन छोटे उपकरणों को लघु पाषाण कालीन (माइकोलिथ) कहते हैं। ये प्रायः ज्यामितीय आकृति के हैं। इस युग में मनुष्य ने पहली बार धनुष-बाण का प्रयोग करना सीखा।[1] भीम बैठका के उत्खनन में एक दीवार भी मिली है, जो भवन-निर्माण के अवशेषों में मानव-निर्मित प्राचीनतम दीवार है। कुछ नर-कंकाल और गले में पहनने के एक या दो आभूषण भी मिले हैं। कैमूर की गुफाओं का व्यवस्थित वैज्ञानिक उत्खनन अभी हुआ ही नहीं। अभी हाल में चुनार में जो उत्खनन हुआ है, उससे आयुधों पर नहीं तत्कालीन उद्योग-धंधों पर प्रकाश पड़ता है। वेलन घाटी का उत्खनन कराकर डॉ॰ साँकलिया ने कुछ शस्त्रास्त्र प्राप्त अवश्य किये थे, जिन्हें उन्होंने सवा लाख वर्ष पूर्व की संस्कृति का प्रतीक माना है।[2] जहाँ तक चित्रों में उपलब्ध आयुधों का सम्बन्ध है, केरवाघाट के एक चित्र में हथकुठार भी प्रदर्शित है।[3] पंचमुखी गुफा में ज्यामितीय आकार की जो चित्रावलियाँ मिलीं हैं, उनसे भी तत्कालीन आयुधों और शस्त्रास्त्रों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[4]

जो भी हो, अनेक संदर्भों में भीम बैठका और कैमूर घाटी की संस्कृतियों में जहाँ बहुत अधिक सामंजस्य है, वहीं कुछ अन्तर भी है। कैमूर की गुफाओं के चित्र जहाँ लाल, कत्थई या सफेद रंग के हैं, वहीं भीम बैठका के चित्र लाल और सफेद के अतिरिक्त पीले और हरे रंग के भी हैं। मध्य प्रदेश में सबसे अधिक गुहाचित्र मिले हैं। तब भी यह कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में उनकी खोज का काम नहीं के बराबर हुआ है। संभव है, यहाँ व्यवस्थित ढंग से कार्य होने पर वहाँ से भी अधिक सामग्री प्राप्त हो जाय क्योंकि यहाँ की गुफाओं का उत्खनन कार्य अभी हुआ ही नहीं है।

---

1. भीम बैठका की गुफाओं के रहस्य, डॉ॰ वीरेन्द्रनाथ मिश्र, धर्मयुग, 30 सितम्बर, 1973, पृ॰-10
2. प्रागैतिहासिक काल में उत्तर प्रदेश, डॉ॰ साँकलिया एवं मालती नागर, धर्मयुग, 9-4-72, पृष्ठ-25
3. सोन घाटी संभाग, केरवाघाट का चित्र फ॰ 16, 19
4. पंचमुखी संभाग, रेखांकन फ॰ 22

भीम बैठका के आधार पर मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के अन्तर्गत स्थित पुष्पराजगढ़ नामक तहसील के गुहाचित्रों का अध्ययन भी किया जा सकता है । इसे गोंडवाना खण्ड के नाम से जाना जाता है, जो अत्यन्त प्राचीन है । इस तहसील के उफरी खुर्द नामक गाँव के निकट की डोगरी पहाड़ी में वनस्पतियों और जलीय घोंघों के अनेक शिलीभूत टुकड़े (फासिल्स) पाये गये हैं । शहडोल से 25 कि० मी० उत्तर-पश्चिम चौंरी गाँव के पास लिखनवारा नामक स्थान गजवाही गाँव के निकट है । वहाँ की एक डोगरी में हाथ की छापें देखने को मिलीं । यह स्थान बड़ा भयानक तथा खतरनाक है । यहाँ दोहरी ज्यामितीय रेखाओं से घिरे कई चतुर्भुज या चक्र-यन्त्र मिले हैं । ऐसे चित्र मिरजापुर के पंचमुखी गुफाओं में भी पाये जाते हैं । मिरजापुर में सलखन की एक पहाड़ी पर भी अभी हाल में फासिल्स मिली हैं जो पुरातत्व की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है ।

मध्यप्रदेश के सीधी जिले में सोन-तट के कैमूर पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर(24°,33°उत्तर, 82°, 33° पूरब) माची के पास भी प्रागैतिहासिक काल के चित्र मिलते हैं, किन्तु ऐसे चित्र वहाँ भी नहीं हैं । हाँ, जानवरों के चित्र अवश्य हैं जो मिरजापुर के लिखनियाँ, चनाइनमान, मुखादरी, केरवाघाट, पंचमुखी आदि के चित्रों से मेल खाते हैं । इनका समय अनुमानतः मध्य पाषाण या उससे कुछ पहले उत्तर-पुरा पाषाण काल के आसपास हो सकता है ।

धौलागिरि और गोरा कोहबरों के घटना-प्रधान चित्र, मिरजापुर के चित्रों के संदर्भ में—सीधी जिले में ही, बीछी गाँव के निकट कुछ गुहाचित्र प्राप्त हुए हैं । यह गाँव कैमूर की छाँव में बसा हुआ है । यहाँ दो चित्रित शैलाश्रय हैं जो एक दूसरे से लगभग 2 कि० मी० दूर हैं । एक को कहते हैं धौलागिरि का कोहबर, दूसरे को गोरा पहाड़ का कोहबर । कोहबर नामकरण का एक सांस्कृतिक और पारम्परिक कारण प्रतीत होता है । गोरा पहाड़ के कोहबर में गज-ग्राह युद्ध का एक चित्र मिला है जो हमारी पौराणिक परम्परा का प्रतीक है । इसी प्रकार नाव, भैंसा, त्रिभुज, चौकोर निशान, डमरू, तीर-धनुष लिये मनुष्य, दौड़ते और रथारूढ़ मानव के चित्र भी मिले हैं । मिरजापुर में ऐसे चित्र, लेखनियाँ और पंचमुखी में देखे जाते हैं ।

आल्टामिरा और मिरजापुर के गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन—भारत की अपेक्षा विदेशों में गुहाचित्रों के अध्ययन को अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है । वहाँ गुहाचित्रों की सुरक्षा के लिए अनेक प्रयत्न भी किये जा रहे हैं जब कि भारत में इस तरह के प्रयत्न नगण्य हैं । मिरजापुर की अनेक चित्रित पहाड़ियाँ टूटती जा रही हैं और उनके साथ ये चित्र भी नष्ट होते जा रहे हैं ।

आल्टामिरा के संदर्भ में जब हम मिरजापुर के गुहाचित्रोंका अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि आल्टामिरा की गुफाओं में भी जीवाकृतियों की संख्या अधिक है। लम्बी सींग के जानवर, जैसे—महिष, बारहसिंगा, हरिण अनेक स्थानों पर चित्रित हैं। हिरण और सूअर के चित्र भी दोनों स्थानों पर पाये जाते हैं। इसी प्रकार गाय, घोड़े और वकरियों के भी चित्र मिलते हैं। मिरजापुर में हाथी, ऊँट, बन्दर, भालू आदि जानवरों के अतिरिक्त सेना-प्रयाण, युद्ध, नृत्य-संगीत, पशु-चारण आदि के दृश्य-चित्र पाये गये हैं जो आल्टामिरा में नहीं के बराबर हैं।

दक्षिणी रोडेशिया और मिरजापुर के गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन—
पाश्चात्य विद्वान लिवो फ्रोबेनियस ने 1904 तथा 1935 के बीच बारह यात्राएँ की थीं। उन्होंने 'जर्मन इनर अफ्रीकन रिसर्च इक्सपेडिशन (डी० आई० ए० एफ० ई०) संस्था के माध्यम से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य खोज निकाले जिनका प्रकाशन उनकी सौवीं जन्मतिथि के अवसर पर किया गया। उन्होंने अफ्रीका की संस्कृति की विश्व की अन्य संस्कृतियों से तुलना करके अध्ययन-विवरण प्रस्तुत किया है। 'इन्टर नेशनल इसकाला'[1] पत्रिका में एक लेख और कुछ गुहाचित्र प्रकाशित किये गये हैं। चित्रों में एक मरे हुए राजा का चित्र है जिसे कुछ आदमी घेरे हुए हैं।[2] एक झोपड़ी है, कुछ चरवाहों और शिकारियों के चित्र हैं, कुछ जानवरों तथा कीड़े-मकोड़ों के भी चित्र दिये हुए हैं। जानवरों मे पालतू और जंगली दोनों हैं। कुछ हरिणों के-से चित्र भी हैं। शेर, चीते जैसे भयंकर जानवरों के चित्र नहीं हैं। यद्यपि ये चित्र भी अफ्रीका की प्रागैतिहासिक संस्कृति पर ही प्रकाश डालते हैं। फोबेनियस महोदय ने अपनी अन्य पुस्तकों में भी गुहाचित्रों का उल्लेख किया है।[3] इन चित्रों से जब हम मिरजापुर के चित्रों की तुलना करते हैं तो पर्याप्त साम्य मिलने पर भी अनेक स्थानों पर वैसम्य भी पाते हैं। चित्रों के आधार पर दोनों देशों की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में काफी भिन्नता प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मिरजापुर में रहने वाला उस समय का मानव अधिक असभ्य था क्योंकि वहाँ की। गुफाओं में चित्रित आदमी

1. इन्टर नेशनल इसकाला, अंग्रेजी संस्करण, फरवरी 12, 1973

2. ऐसा ही एक चित्र संभाग में पाया गया है। चनाइनमान (पश्चिम) चित्र फ० 11

3. कुलतुरजेजचिचेट अफ्रीकाज-कल्चरल हिस्ट्री ऑव अफ्रीका, 1933, ऐण्ड कुलतुरक्राइज

निर्वसन हैं। यहाँ का मानव भी निर्वसन ही रहता था, किन्तु राजा बड़े ठाट-बाट से रहता था। वह वस्त्र जैसी कोई वस्तु पहनता था और सिर पर पगड़ी या कलँगी धारण करता था। अफ्रीका के निवासियों के शरीर की बनावट भी कुछ दूसरे ही प्रकार की होती थी। नाक लंबी होती थी, पैर लंबे होते थे, कमर पतली होती थी, किन्तु लिंग लंबा होता था। स्त्रियाँ भी पुरुष के साथ नंगी ही रहती थीं। मुक्त मैथुन की क्रियाएँ होती थीं। इसके विपरीत कैमूर घाटी के चित्रों में ऐसा कुछ नहीं मिलता। पंचमुखी और चनाइनमान में जो चित्र मिले हैं, उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा ठाट-बाट से रहता तो था, किन्तु उसका जीवन सादा था। तुलनात्मक अध्ययन से अफ्रीका के चित्र अधिक पुराने प्रतीत होते हैं।

डॉ० एच० गार्डन ने लिखा है कि योरोप में अत्यन्त पुरातन शिलाचित्र खोजे जा चुके हैं, उनमें भी अधिक पुराने चित्र अफ्रीका में पाये गये हैं जिनमें बहुत से तो अतिशय प्राचीन माने गये हैं। निःसन्देह अब भारत की बारी है कि पुरा-पाषाण-कालीन कला के एक केन्द्र के रूप में उसे भी मान्यता दी जाय।[1]

पेरिस के गुहाचित्र, कैमूर घाटी के गुहाचित्रों के संदर्भ में—विन्ध्याचल तथा कैमूर-घाटी में प्राप्त शैल-चित्रों की तुलना जब हम पेरिस के तासिल नामक स्थान के शैलचित्रों से करते हैं तो उनमें भी काफी समानता पाते हैं। पेरिस के इन गुहा-चित्रों का अध्ययन फ्रांस के विद्वान प्रोफसर हेनरी लोठ ने किया है।[2]

उनके द्वारा प्राप्त कुछ चित्रों का रेखांकन रूसी विद्वान डी० स्क्वीर्सो ऐण्ड बी० तलमों ने अपनी पुस्तक 'आन द ट्रैक ऑव डिसकवरी' में दिया है। उन्होंने लिखा है कि ये चित्र बड़े पुराने हैं तथा यथार्थ की भूमि पर आधारित भावात्मक अभिव्यक्ति के प्रतीक हैं। उनको देखने से ऐसा लगता है कि कलाकार एक बहुत बड़ी शक्ति को प्रदर्शित करना चाहता है। उसमें से एक चित्र 6 मी० लम्बा प्राप्त हुआ है जिसे दैत्याकार कहा जा सकता है। यह समझ में नहीं आता कि उस कलाकार ने इस चित्र को बनाने का संकल्प कैसे किया होगा। क्या सचमुच इस आकार का कोई व्यक्ति या दैत्य हो सकता है? चित्र को देखने से ऐसा लगता है कि कोई व्यक्ति ही भयानक वस्त्र पहने हुए है। हेनरी महोदय ने उस चित्र को 'द ग्रेट मार्शियन गाड' कहा है। लेखक ने चित्रों का विस्तार से उल्लेख

---

1. प्रि० वै० ई० क०, पृ० 98

2. ए० लाडेकावरटेड्स फ्रेस्क्वेज डू तासिल, पेरिस, 1958

नहीं किया है और न ही सभी प्रकार के चित्रों का वर्गीकरण ही प्रस्तुत किया है। 6 मी० लंबे आदमी के चित्र के अतिरिक्त कुछ जानवरों के चित्र भी दिये गये हैं जिनमें अधिकतर हरिण जैसे हैं। जिराफ का एक चित्र दिया हुआ है। एक शिकारी तीर से उन्हें मारने के लिए पीछा कर रहा है। थोड़ी दूर पर कुछ और शिकारी भी हैं जो घात लगाये हुए हैं। जानवरों के चित्र बड़े सजीव हैं।

कैमूर तथा विन्ध्य की गुफाओं में प्राप्त चित्रों की अपेक्षा वे अधिक सुन्दर तथा कलात्मक ढंग से प्रदर्शित हैं। ऐसे जानवरों की सं० 9 है। इनमें से कुछ सावधान खड़े हैं और कुछ तेजी से दौड़ते हुए दिखाये गये हैं। मिरजापुर में आदमियों के जो चित्र प्राप्त हुए हैं वे शिलाओं पर छोटे आकार में चित्रित हैं किन्तु उनके आकार प्रकार से ऐसा लगता है कि वे अफ्रीका के मानव की अपेक्षा कम तगड़े या शक्तिशाली नहीं हैं। जहाँ तक जानवरों के चित्रों का सवाल है, बकरी आदि के चित्र तो यहाँ भी पाये जाते हैं किन्तु कला की दृष्टि से वे उतने आकर्षक नहीं हैं जितने फ्रांस के।

इस प्रकार मिरजापुर के चित्रों से जब हम मध्य प्रदेश, बिहार तथा भारत के अन्य प्रदेशों अथवा अफ्रीका, फ्रांस आदि देशों के गुहाचित्रों से तुलना करते हैं तो कहीं समता और कहीं विषमता पाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि अलग-अलग स्थानों के चित्र अलग-अलग संस्कृतियों के प्रतीक हैं।

छठा अध्याय

गुहाचित्रों में व्यक्त सांस्कृतिक मूल्यों का अध्ययन

संस्कृति का जन्म तब हुआ जब मानव ने अपनी मौलिक आवश्यकताओं (प्रिमिटिव नीड्स) से मुक्ति पायी। जब वह अपनी मूल आवश्यकताओं को पूरा कर सकने में समर्थ हो चुका तब उसने सुसंस्कृत, सभ्य समाज की कल्पना की। प्रमुख रूप से संस्कृति की दो अवस्थाएँ मानी गयी हैं—1–प्रारंभिक, 2–विकसित।

प्रारंभिक अवस्था को बर्बर तथा असभ्य अवस्था भी कहा गया है। जिस अवस्था में विकसित संस्कृति के सामान्य लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते, उसे प्रारंभिक अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में आखेट, पशु-पालन, कृषि, पुरोहिती आदि कार्य तो होते हैं, किन्तु प्रशासन-व्यवस्था, ग्रन्थों की भाषा, गणित-ज्योतिष तथा अन्य विज्ञान, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग, व्यवसाय और उनकी विविध गतिविधियाँ विकसित नहीं होतीं। इस दृष्टि से जब हम प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति का अध्ययन गुहाचित्रों के संदर्भ में करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि वह प्रारंभिक अवस्था की संस्कृति थी।[1]

गुहाचित्र जीवन की कलात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। जीवन और गुहाचित्र परस्पर पूरक और अविभाज्य हैं, क्योंकि वे भी तत्कालीन साहित्य के प्रतीक हैं। यह वह साहित्य है जो वस्तुतः अभिजात जीवन, अखिल मानव जीवन का सबसे ऊपरी स्तर होता है और लोक-जीवन की गतिविधियों का सम्यक् विकास। उसका गतानुगतिक सनातन संस्कृति का अंकन अलिखित, गुहा-गह्वरों में चित्रित साहित्य में भी होता है जो अद्यावधि सभ्य और उच्च संस्कृति के निवासियों की अपेक्षा मानव समुदाय कहीं अत्यधिक प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक समाज का अपना अपना रहन-सहन, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, विश्वास, जीवन के मूल्य, धारणाएँ रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ तथा सामाजिक मान्यताएँ होती हैं। प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्रों के अध्ययन से भी ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय का मानव भी सामाजिक प्राणी था। गुफाओं में ही सही, वह प्रायः समूह बनाकर योजनाबद्ध तरीके से बस्ती बनाकर सपरिवार जीवन यापन करता था। स्वतंत्र होते हुए भी वह सामाजिक मान्यताओं का यथाविधि पालन करता था।

---

1. भारत का सांस्कृतिक इतिहास, डॉ० राजेन्द्र पाण्डेय, पृष्ठ–91

पुरातत्व विभाग की ओर से जो उत्खनन कार्य कराये गये हैं, उनमें कुछ उपकरण जैसे चीर-फाड़ एवं शिकार करने के, भी प्राप्त हुए हैं, कुछ गेरू रंग के मृद-भाँड, कई तरह की ठिकरियाँ, प्रस्तर, ताँबा, काँसा, आदि धातुओं की कुल्हाड़ियाँ, हँसिया तथा दँतारी आदि मिले हैं। साथ ही जला हुआ गेहूँ, चावल, दाल इत्यादि वस्तुएँ भी मिली हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय तक मानव एक स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगा था और कुछ कृषि तथा उद्योग भी करने लगा था। डॉ० सॉकलिया के अनुसार "सभी दृष्टियों से बेलन-घाटी मानव के निवास के लिए अत्यन्त अनुकूल थो। मानव इधर एक लाख साल पहले रहते थे, जब बेलन नदी एक लंबी-चौड़ी तलहटी बनाती रहती थी और इसमें 46 फीट मोटा, रोड़ों या कंकड़ों तथा रेतो का स्तर जमा हो चुका था"।[1]

मिरजापुर में जो गुहाचित्र प्राप्त हुए हैं, उनसे उस समय के मानव जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। पशु-पालन, गोचारण, युद्ध-प्रयाण तथा आखेट आदि के दृश्य तो प्रायः चित्रित किये ही गये हैं, दाँत वाले हाथी, जंगली भैंसे, हिरण और गैंडे के चित्र बहुतायत से मिले हैं। उत्खनन में जानवरों की कुछ हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि बेलन नदी से प्राप्त हड्डियों के अध्ययन से इतना ज्ञात होता है कि लंबे दाँतों वाला हाथी, जंगली भैंसा और नाना प्रकार के हिरण उस समय वहाँ थे तथा जंगली कंद-मूल खाकर अपना निर्वाह करते थे[2]। एक पुरातात्विक खोज-विवरण के अनुसार विन्ध्य-क्षेत्र की नदियों की उपत्यकाएँ और विशेषकर बेलन नदी के अनुभाग भारत में मानव की प्रथम उत्पत्ति और उसके क्रमिक विकास के साक्षी हैं। इनके विभिन्न स्तरों में 4–5 लाख वर्ष से लेकर 5 हजार वर्ष पूर्व तक का पुराना इतिहास सुरक्षित है। मानव-निर्मित उपकरण तथा तत्कालीन पशु-जगत के भस्मीभूत अवयव हर स्तर से प्राप्त हुए हैं। × × × × इलाहाबाद जिले के दक्षिणी अंचल तक में बेलन और उसकी सहायक नदियों के अनुभागों एवं वेदिकाओं के अवलोकन से पता चलता है कि पुरा-उत्तर-पाषाण काल में आज से लगभग 20 हजार वर्ष पहले जलवायु में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ था जिससे बेलन नदी का पाट सिमट गया और वह गहरी हो गयी[3]।

1. धर्मयुग : 9, 4, 72 पृष्ठ 25

2. वही पृष्ठ 25

3. 20–26 अगस्त, 78 के दिनमान में गोवर्द्धनराम शर्मा का लेख, पृष्ठ 25

वेलनघाटी का जन्म मिरजापुर के मध्य विजयगढ़ परगना के कोरियाँव और करद गाँवों के मध्य हुआ। यह नदी घोरावल के पास आकर झरने बनाती है। यहाँ से वह जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, भयंकर होती जाती है और अपने प्राचीनतम संस्कृतियों को भी अपने गर्भ में समेटती जाती है। वह आगे चलकर इलाहाबाद के पास टोंस में मिल जाती है। फिर टोंस और वेलन दोनों नदियाँ सहजाता बहिनों की भाँति थोड़ी दूरी तय कर गंगा में विलीन होकर घेरा बनाती हुई पुनः मिरजापुर की कोख में विलसित विन्ध्य की घाटियों को अभिसिंचित करती हुई आगे चली जाती हैं। इस प्रकार जहाँ एक ओर वेलन और गंगा इस जनपद को अपनी संस्कृतियों से प्रभावित करती हैं, वहीं दूसरी ओर दक्षिणांचल मे प्रवाहित होने वाली सोन, कनहर, रेंड़, बिजुल, कर्मनाशा आदि नदियाँ भी मिल-जुल कर अपनी संस्कृति की छाप इस जनपद पर छोड़ जाती हैं। गंगा, सोन और वेलन-घाटी के मानव एक जैसे थे। वे समयानुसार स्थान-परिवर्तन कर लिया करते थे। गर्मी में वे गंगा की तराई में रहते थे तो शेष समय सोन की तराई मे।[1] ऐसा महदहा के उत्खनन में प्राप्त पुरावशेषों को देखने से भी प्रमाणित होता है। उत्खनन में नर-कंकाल, स्त्री-पुरुष, आभूषण, हार, कुंडल, पशु-पक्षी, दरियायी घोड़ा, गैंडा, हाथी, बैल, जंगली भैंसा, हिरण, बारहसिंगा, सूअर, कछुआ, मछली, और घोंघा के अवशेष मिले हैं।[2]

इलाहाबाद विश्व-विद्यालय के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर जी० आर० शर्मा, ने लिखा है कि "गंगा-घाटी मे विन्ध्य क्षेत्र की ओर से ही प्रथम मानव का आगमन हुआ था। फतेहपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, प्रतापगढ़, और सुलतानपुर में फिर फाफामऊ से उन्नाव रोड पर दूर-दूर तक गंगा के किनारे पाषाण युगीन मानव-चिह्न 200 से अधिक स्थानों में विभिन्न चार स्तरों की माटी मे दबे हैं। खुदाई मे कान के कुण्डल, गले के हार, हड्डियों और सींगों के बने कंगन, आदि मिले हैं[3]। इसी प्रकार लक्षणी, ब्लेड, उभरे ब्लेड, नोक, खुरचनी, अर्द्धचन्द्र, क्रोड़ एवं फलक, आयुध प्रकरणों में ब्लेड, भूथड़े पास, पार्श्व वाले ब्लेड, खुरचनी, त्रिभुजाकार, चतुर्भुजाकार ज्यामितीय उपकरण आदि पुरावशेष भी प्राप्त हुए हैं। इन संदर्भो मे जब हम मिरजा-पुर के प्रागैतिहासिक-कालीन गुहाचित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो इस

1. प्रागैतिहासिक मानव की कहानी : गंगा घाटी की प्राचीन संस्कृति पर नया प्रकाश, गोवर्द्धनराम शर्मा, 'दिनमान' 20 अगस्त, 978, पृ०—25 व 26

2. वही, पृष्ठ 26

3. इलाहाबाद में हजारों साल पुराने नर-कंकाल, डॉ० विवेकी राय, धर्मयुग 20–10–1978, पृष्ठ 49

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि खुदाई में प्राप्त जो वस्तुएँ मिली हैं उनमें से अनेक के चित्र भी इन गुफाओं में अंकित हैं। पंचमुखी, भल्दरिया, विजयगढ़, केरवाघाट आदि स्थानों के चित्र खुदाई में प्राप्त वस्तुओं के मेल में हैं और तत्कालीन संस्कृति को उजागर करते हैं।

गुहाचित्रों में प्राकृतिक जीवन के संकेत—प्रकृति अनादि काल से ही मानव को जीवन में संघर्ष की प्रेरणा देती रही है। समाज का ऊबा व्यक्ति वनों, खोह-कन्दराओं और गुफाओं में जाकर शांति-लाभ करता रहा है। गुहाचित्रों में वनों, पर्वतों, नदियों नालों-झरनों, पर्वतों, वृक्षों, अन्य पशुओं तथा पुष्पों का यथास्थान उल्लेख हुआ है। वैसे भी, कैमूरघाटी तथा विन्ध्य की पर्वत-श्रृंखलाओं का प्राकृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। प्रागैतिहासिक मानव ने गुहाचित्रों में उसी जीवन का चित्रों के माध्यम से अंकन का सफल प्रयास किया है। मिरजापुर की अधिकतर गुफाओं में हाथी, हरिण, गैंडा, सुअर, शेर, जंगली भैंसा, गाय-बैल, कुत्ता, बकरी, ऊँट, घोड़ा आदि के सजीव चित्र अंकित हैं। मछली, कच्छप, साँप, बिच्छू तथा अन्य कीड़ों-मकोड़ों के चित्र भी यथास्थान देखे जाते हैं। वृक्षों और वन्य जीवन के चित्र सर्वत्र मिलते हैं। साथ ही श्रमिक वर्ग के सहज जीवन का सरस चित्रण भी देखा जाता है। आखेट-जीवन के चित्र प्रायः सभी गुफाओं में बहुलता से देखे जाते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार पंचमुखी में पहली बार गैंडे का चित्र मिला है, जबकि इन पंक्तियों के लेखक ने चनाइनमान-केरवाघाट, पंचमुखी, लेखनियाँ, आदि में प्रायः सभी स्थानों पर गैंडे के चित्र देखे हैं।

सामाजिक जीवन के तत्व—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने की सहज प्रवृत्ति उसमें आदिकाल से ही रही है। यही कारण है कि उसने प्रागैतिहासिक काल में भी डेरे-झोपड़ियाँ तथा गुफाएँ बनाकर या चुन कर उनमें रहना आरंभ कर दिया था। गुफाओं में भी वह समूह में रहता था और समूह में ही आमोद-प्रमोद तथा यात्राएँ करता था।[1] उस समय का मानव फल-फूल के रस आदि का सेवन मादक द्रव्य के रूप में करता रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय नर-नारी में उन्मुक्त मैथुन (फ्री सेक्स) का प्रचलन था। किसी प्रकार के पर्दे या दुराव-छिपाव का सवाल ही न था। लेखनियाँ में एक चित्र गर्भवती स्त्री का मिला है, इसी प्रकर चनाइनमान में भी पति-पत्नी के आलिंगन का एक दृश्य चित्रित है। ऐसा अनुमान है कि उस समय तक छुआछूत, जातिपाँति की कल्पना तक ने जन्म नहीं

1. दे० लेखनियाँ संभाग के आमोद-प्रयोद के चित्र फ० 18

लिया था। छोटे-छोटे परिवार रहे होंगे और मनुष्य मेलजोल से रहता रहा होगा। शैलाश्रयों में जहाँ एक ओर युद्ध के चित्र मिले हैं, वहीं दूसरी ओर स्नेह, प्रेम, दया, करुणा और आपसी लगाव के चित्र भी देखे गये हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक पर्वोत्सव—प्रागैतिहासिक काल की संस्कृति से ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता कि आज की तरह होली, दीवाली, दशहरा आदि पर्वों का प्रचलन उस समय भी था, बल्कि इस बात का संकेत अवश्य मिलता है कि उस समय किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर नृत्य अथवा आमोद-प्रमोद के द्वारा मानव अपना मनोरंजन अवश्य कर लिया करता था।[1]

रीति-रिवाज—उस समय विवाह की प्रथा थी अथवा नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, तब भी यह तो मानना उपयुक्त ही होगा कि स्त्री-पुरुष अपने लिये जीवन-साथी खोजते रहे होंगे। पंचमुखी के पास और चनाइनमान में एक-दो चित्र ऐसे मिले हैं जो पारिवारिक जीवन के सूचक हैं। अवगुंठनवती नारी का भी एक चित्र मिला है। स्त्री-पुरुष के परस्पर प्यार करते समय का चित्र भी मिला है। उस समय विवाह की राक्षस अथवा उढ़ार की प्रथा रही होगी। शक्तिशाली व्यक्ति सुन्दरी को अपने बाहुबल से अपना बना लेता रहा होगा।

मृगया, नाच-गाना तथा अन्य मनोरंजन—प्रागैतिहासिक काल में मृगया मनोरंजन का मुख्य साधन थी। तीर-कमान से जंगली जानवरों का शिकार किया जाता था। पंचमुखी और विजयगढ़ में कई व्यक्तियों द्वारा समूहबद्ध होकर गैंडे के शिकार करने का दृश्य इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्पष्ट है कि उस समय का मानव शक्तिशाली और मांसल जानवरों को समूहबद्ध होकर और घेरकर मारता था[2] और फिर उसे टेक कर अपने निवास स्थान पर लाता, उसका चमड़ा उधेड़ कर मांस तो खा जाता, किन्तु चमड़े को सुखा कर उसका प्रयोग ओढ़ने-बिछाने अथवा पहनने में करता था।[3] हरिण जैसे छोटे जानवरों को एक ही व्यक्ति अकेला दौड़ा कर तीर-कमान से मार डालता था।[4] सूअर, सामर और भालू जैसे जानवरों का शिकार वह कुत्तों की सहायता से करता था।

---

1. दे० पाल वाली नाव में आमोद-प्रमोद का दृश्य, चित्र फ०-5

2. दे० पंचमुखी का चित्र फ०-25

3. दे० चनाइनमान संभाग का चित्र फ०-6

4. दे० कण्डाकोट संभाग का चित्र फ०-24

लेखनियाँ में समूह-नृत्य का जो चित्र मिला है उससे तथा अप्सरा के मिले चित्र से भी यह रहस्य उद्घाटित होता है कि उस समय ढोल, मजीरा, तुरही और इसी तरह के भोंपू जैसे वाद्य यन्त्रों का भी प्रयोग होता था।[1]

अनुशासन तथा अभिवादन—अनुशासन तथा अभिवादन व्यक्ति सभ्यता तथा वातावरण से सीखता है। प्रागैतिहासिक मानव में भी अनुशासन और अभिवादन की भावनाएँ थीं। कई चित्र हाथ जोड़ने और मस्तक झुकाने की मुद्रा में मिले हैं। उस समय भी बड़े-छोटे का भेद था और छोटा बड़े की बात मानता था। सेना-प्रयाग के दृश्यों को देखने से लगता है कि सेनाएँ पंक्तिबद्ध रूप में चलती थीं। नृत्य भी पंक्तियों में होता था। मुखिया झगड़ों का निपटारा करता था। अनुशासन बनाये रखने के लिए अपराधी को कठोर दंड भी दिया जाता था।

पारिवारिक सम्बन्ध—व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज का निर्माण होता है। प्रागैतिहासिक काल के चित्रों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय समाज के लोग एक दूसरे के साथ परिवार का-सा व्यवहार करते थे। वैसे, परिवार प्रायः छोटा होता था। सब एक दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होते थे। प्रायः एक परिवार में माता-पिता, पति-पत्नी और पुत्र-पुत्रियाँ होती थीं। दूर के रिश्तों का कोई सम्बन्ध न था, क्योंकि लोग स्थान-परिवर्तन भी करते रहते थे।

आर्थिक जीवन—अर्थ आदमी की अनिवार्य आवश्यकता है, यद्यपि भारतीय संस्कृति में उसे एक साधन के रूप में ही महत्व दिया जाता रहा है, साध्य नहीं। आदिम-मानव ने उसे अपनी जीविका का साधन ही माना था। इसीलिए वह कुछ कृषि, पशु-पालन तथा व्यापार आदि भी कर लेता था। उसके आर्थिक जीवन का अध्ययन निम्नलिखित परिप्रेक्ष्य में किया जा सकता है—

(क) खाद्य-पदार्थ—प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय का मानव प्रायः नदियों के तटों पर रहता था। रहने के लिए नदी-तट का चुनाव मुख्यतः इसीलिए वह करता था क्योंकि वहाँ पानी सुलभ था जो जीवन-निर्वाह के निमित्त सर्वाधिक आवश्यक पदार्थ है। अधिकतर गुहाचित्र नदियों या नालों-झरनों के ही तट पर बने हैं, जहाँ हिंस्र पशुओं से भी रक्षा हो सके। वह मांसाहारी था, और प्रायः इसी उद्देश्य से शिकार किया करता था। कन्द-मूल-फल भी उसका मुख्य आहार था। आवश्यकतानुसार वह खेती भी कर लेता था।

1. दे० छातुग्राम, कण्डाकोट संभाग का चित्र फ०-14

मुखादरी में झोपड़ी का जो चित्र मिला है उसके आस-पास खेती करने के चिह्न भी दिखलायी पड़ते हैं। इससे ऐसा लगता है कि मानव कृषि से उत्पादित अन्नाहार भी करता था।

(ख) विविध पात्र—उस समय धातु-निर्मित पात्र नहीं होते थे, अतः मानव काष्ठोपकरणों तथा मिट्टी के पात्रों का प्रयोग करता था। पात्रों की उसे आवश्यकता भी न थी, क्योंकि उसका अधिकतर जीवन जंगल में मृगया करते ही बीतता था। उसमें संग्रह की प्रवृत्ति का भी प्रायः अभाव था। वह गुफाओं में रहता था और एक स्थान से दूसरे स्थान तक आता जाता रहता था। उसकी गृहस्थी के सामान साथ रहते और जब वह किसी गुफा में डेरा डाल देता तो अपने सामान भी उसी में उपन्यस्त कर देता था। विजयगढ़ में तथा भल्दरिया की गुफाओं में भी मनोरंजन घोष को मिट्टी के पात्रों के कुछ अवशेष मिले थे।

(ग) धार्मिक जीवन—सत्याचरण, गो-स्त्री-बाल-रक्षा, असावधान, शरणागत, भगोड़े एवं निःशस्त्र की अवध्यता, नम्रता, साहस, न्याय-रक्षा, आदि वीरों के सहज स्वाभाविक गुण माने जाते हैं। तत्कालीन मानव भी इन उदात्त गुणों से रहित नहीं था। गुहाचित्रों मे ऐसे अनेक चित्र हैं जिनसे इन तथ्यों की पुष्टि हो जाती है। मुखादरी, अहरौरा के पास लेखनियाँ में सूँड़ उठाये हाथियों के सामने व्यक्ति को पूजा की मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय, हस्ति-पूजा प्रचलित हो चुकी थी। इसी प्रकार वृक्ष-पूजा के प्रचलित होने के प्रमाण भी मिले हैं। देवी-देवताओं में सूर्य, चन्द्रमा, पवन और जल की पूजा-प्रथा के संकेत भी कतिपय चित्रों से मिलते हैं।

बलि-प्रथा के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। समूह-पूजा-विधान का प्रचलन था। लोगों में धार्मिक प्रवृत्ति आ चुकी थी। उस परम तत्व की प्राप्ति के लिए तथा आरोग्यता के लिए भी भूत-प्रेत, मन्त्र-तन्त्र, टोना-टोटका पर विश्वास किया जाता था। प्रकृति को देख कर शकुन-अपशकुन का विचार किया जाता था।

राजनीतिक जीवन—जहाँ राजा होता है, वहाँ राजनीति अपने आप आ जाती है और राजा या मुखिया हर समय, हर युग में रहे हैं। प्रागैतिहासिक काल में भी राजा-प्रजा का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध था। उस समय सरदार या मुखिया ही राजा होता था जिसके आदेश पर सभी जूझ मरने के लिए तैयार रहते थे। केरवाघाट, पंचमुखी, चनाइनमान, लेखनियाँ, मुखादरी की गुफाओं में ऐसे चित्र मिले हैं जिनसे उस समय की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। एक व्यक्ति को युद्ध के लिए ललकारते हुए दिखाया गया है।

(क) घोड़े-हाथी की सवारी—उस समय यातायात अथवा सवारी के मुख्य साधन पशु और पशुओं में भी मुख्य रूप से हाथी और घोड़े थे। योद्धा प्रायः पैदल या हाथी पर सवार हो कर ही युद्ध करते थे। केरवा में गैंडे का एक ऐसा चित्र मिला है जिस पर एक आदमी बैठा है और पीछे से दूसरा आदमी उसे लोक रहा है।

(ख) युद्ध की कला—युद्ध आमने-सामने होता था। युद्ध के बाजे भी बजते थे। दोनों पक्षों के योद्धा या तो हाथी पर सवार होकर लड़ते थे या पैदल ही एक दूसरे पर प्रहार करते थे। सिर कटे और हाथ कटे योद्धाओं के चित्र भी देखे गये। पंचमुखी कंडाकोट में कटे हुए हाथ से रक्त चूते एक व्यक्ति को प्रदर्शित किया गया है। वहीं एक दूसरी गुफा में सूँड़ उठा कर समूह में शत्रु पर आक्रमण की मुद्रा में हाथियों के चित्र भी दिखाये गये हैं।

(ग) युद्ध, आयुध तथा शस्त्रास्त्र—उस समय युद्ध लाठी से हड्डी अथवा पत्थर के नुकीले या धारदार अस्त्र से किये जाते थे। गोले, धारदार पत्थरों के औजार भी मिले हैं। चक्र जैसी कोई वस्तु भी होती थी जिसे लोग फेंक कर मारते थे। पंचमुखी में अंग्रेजी के ए, यू, एक्स, सी, जे, एस, डी, आदि आकार के अतिरिक्त गदा के आकार के आयुध-चित्र भी मिले हैं। लगता है उस समय के लोग इनका प्रयोग करते थे लेखनियाँ (राजपुर) में एक आदमी को तीर चलाते हुए प्रदर्शित किया गया है। केरवा घाट में बड़े हथकुठार या कटारी का चित्र भी मिला है।

यातायात के साधन—नदियाँ यातायात का मुख्य साधन रही हैं। वे सांस्कृतिक प्रचार-प्रसार की वाहिका रही हैं। प्रागैतिहासिक कालीन मानव ने नदियों के किनारे ही अपना आवास सम्भवतः इसीलिए बनाया होगा कि वह नाव या बहर के सहारे अपनी यात्राएँ करता रहे। चनाइनमान में पालवाली नाव का चित्र और केरवा घाट की गुफा में छोटी नाव से नदी पार करने का दृश्य इसका प्रमाण है। यात्री पंक्तिबद्ध रूप में दोनों तटों पर छोटी नौका से ही पार उतरते थे और उसे लग्गा या बाँस से खेते थे। कोई सामान बाँस या लकड़ी में बाँध कर दो आदमी उसे कंधे के सहारे टेक कर ले जाते थे। कुछ चित्रों को देखने से ऐसा लगता है कि उन दिनों पालकी और कहार का भी प्रचलन था। लोग हाथी, घोड़ा, ऊँट से भी यात्राएँ करते थे। पंचमुखी में एक शिलापर अप्सरा का जो चित्र मिला है उसको देखने से ऐसा लगता है कि परियाँ उड़ कर आकाश में यात्रा करती थीं। लेखनियाँ इसी प्रकार (राजपुर) में डोली में बैठी दुल्हन को कहारों द्वारा ले जाते हुए दिखाया गया है।

सौन्दर्यानुभूतिपरक तथा कलात्मक जीवन—सौन्दर्य तथा कला के प्रति आकर्षण मानव की सहज प्रवृत्ति है। आदि मानव भी इस प्रवृत्ति से रहित नहीं था। ऐसे अनेक गुहाचित्र मिले हैं जिनको देखने से प्रतीत होता कि उस समय के मानव में अपना साज-श्रृंगार करके सुन्दर दिखाई पड़ने की प्रवृत्ति जाग्रत हो चुकी थी। स्त्रियाँ वन-माला,पुष्प,फल तथा पत्ते आदि से अपना बनाव-श्रृंगार करती थीं। विशेष रूप से पूजा-नृत्य या मनोरंजन के समय वे अपने को सजाने का प्रयास करती थीं जिससे उनकी कला-प्रियता का परिचय भी मिलता है।

अन्य प्रमुख तथ्य—लिखनियाँ (राजपुर) में गोचारण के चित्र मिले हैं। एक चरवाहा पगड़ी बाँधे, कन्धे पर लाठी रखे बड़ी मस्ती और आनन्द से बकरी चराता हुआ दिखाया गया है। यहीं एक ब्याती हुइ बकरी का चित्र भी प्रदर्शित किया गया है। यहाँ पालतू और सिंह पशुओं को साथ-साथ घूमते हुए दिखाया गया है। कैमूरघाटी में हाथियों के चित्र सबसे प्राचीन हैं। गैंडे और महिष के चित्र 200 से 1500 ई० पू० तक के माने जाने चाहिए।[1] ऐसे चित्र प्रायः दुर्लभ हैं। कंडाकोट में गर्भवती स्त्री का चित्र परिवर्तनशील सभ्यता का द्योतक है। इसी प्रकार केरवाघाट में मिले दंड-विधान से सम्बन्धित चित्र तत्कालीन दंड-विधान पर प्रकाश डालते है। चुनार तहसील में करहिया, ढोलकिया और जातवा नामक पहाड़ियों में जो गुफाएँ मिली हैं उनमें और चनाइनमान पूरब की गुफा में बने चित्रों में बड़ा साम्य है। दोनों ही में पशु-पक्षियों के अतिरिक्त सूर्य की आकृतियाँ, लहरदार अल्पना डिज़ाइनें, भागती हुई मुद्रा में पशु-आकृतियाँ, उनका पीछा करते आखेटजीवी चित्रित हैं। ये चित्र मध्य प्रागैतिहासिक काल के प्रतीत होते हैं। अहरौरा और सुकृत के बीच झरनों के पास पहाड़ियों के अन्दर, गरई नदी के पुल के समीप महड़रिया नदी के संगम पर तथा छातु ग्राम में जो चित्र हाथी, नंगे मानव के मिले हैं उससे और विजयगढ़ दुर्ग, चोपन के पास सिन्दुरिया गाँव से डेढ़ कि० मी० पूरब की एक गुफा में, मिरजापुर के समीप विंढमफाल की गुफाओं में, मिरजापुर से राबर्टसगंज आते समय कोटा के पास बने पुल से लगभग 1 कि० मी० पूरब की गुफा में बने चित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मानव के खान-पान, रहन-सहन, भाषा-बोली तथा आचार-विचार में एक-रूपता थी। इतना ही नहीं, मध्य प्रदेश और बिहार के चित्रों से जब हम मिरजापुर के चित्रों की तुलना करते हैं तब भी ऐसा ही पाते हैं। काकबर्न महोदय के विचार से प्रागैतिहासिक कालीन चित्रों की दृष्टि से यह भू-खंड (भारत वर्ष के मध्यवर्ती भाग में विन्ध्याचल पर्वत मालाओं तथा उनसे संलग्न सतपुड़ा और मेखल पर्वत की श्रृंख-लाओं तक) सबसे अधिक सम्पन्न सिद्ध हुआ है। नदी-घाटियों में सोन, भलदरिया,

1. स्टोन एण्ड कल्चर ऑव मिरजापुर, पृष्ठ 25

नर्मदा, चम्बल, केन, स्वर्णरेखा, सजोई, महानदी आदि की उत्ताल लहरों और सघन वनों से युक्त घाटियाँ भारत के इसी भू-भाग में अवस्थित हैं।

अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल का मानव सूकर, गाय, भैंस, घड़ियाल, गैंडा, भेंड़, बकरी, घोंघा, कछुआ और हिरण के मांस का प्रयोग अपने भोजन मे करता था। मांस काटने के लिए वह कटारो या हथकुठार का प्रयोग करता था। वह प्रायः नंगा रहता था और प्राकृतिक वस्तुओं से अपने को सँवारता था। पशुओं का आखेट, नृत्य और नौका-विहार उसके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। पशु-पालन और उद्योग में भी वह रुचि लेता था। वह भ्रमणशील था और रमता-जोगी बहता पानी की तरह स्थान-परिवर्तन भी कर लेता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों पशु-पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-बलि, सूर्य या चन्द्र की पूजा की प्रथा में भी वृद्धि होती गयी। चित्रकला में उस युग का मानव दक्ष था। उसे रंगों का ज्ञान था। वह रंग बनाना भी जानता था। यही कारण है कि रंगों से वह अपने रहने के स्थान को सजा भी लेता था। ये सभी तथ्य प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति एवं कला के जीते-जागते प्रमाण हैं।

मिरजापुर के गुहाचित्रों में कला-तत्व—मानव का साहित्य, संगीत और कला से अनादि काल से ही सम्बन्ध रहा है। कला के प्रति अभिरुचि मानव की सहजात प्रवृत्ति है। उसके बिना उसका जीवन नीरस हो जाता है। यही कारण है कि उस युग के मानव में भी कला के प्रति विशेष अभिरुचि पायी जाती है।

गुहाचित्रों के संदर्भ में जब हम तत्कालीन मानव की कलाप्रियता का अध्ययन करते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कला का जन्म प्रकृति के बीच ही होता है। मानव प्रकृति से अपना नाता इस कदर जोड़े हुये था कि उससे अलग होकर वह जीवित ही नहीं रह सकता था। वह खोह-कन्दराओं में रहता था। पशु-पक्षी ही उसके मित्र थे। वृक्षों को वह अपना देवता मानता था और पहाड़ों को [illegible] आश्रय-स्थल। नदियों का जल उसका सुमधुर प्राण-रक्षक पेय था। प्रकृति के इस वातावरण में आदि मानव के अन्दर साहित्य, संगीत और कला की त्रिवेणी का बहना स्वाभाविक ही था। गुहाचित्रों में ये तीनों विशेषताएँ विद्यमान हैं। उस समय के चित्र ही उनके साहित्य की लिपि थी। उस युग का मानव उस लिपि के माध्यम से अपने अंतर्भावों की अभिव्यक्ति कर गया है। इन चित्रों को ही लिपि के विकास का प्रथम चरण मानना चाहिए। डॉ० जगदीश गुप्त का कहना है कि इन चित्रों में ज्ञात लोक-गाथाओं एवं ऐतिहासिक घटना-संदर्भों का अभाव है।[1] किन्तु मेरा अपना ऐसा विचार है

---

1. प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, पृ०-558

कि ऐतिहासिक घटना-संदर्भों का तो अभाव हो सकता है किन्तु मानव का पंक्तिबद्ध खड़ा होना, परिवार में रहना, नौका-विहार करना, दुल्हन को पालकी में बिठाकर ले जाना, आखेट करना, पूजा-पाठ-व्रत-उपवास में विश्वास करना आदि उसकी आचार-संहिता के ही अंग हैं। आखेट करना भी तो कला ही है। वह इस कला में प्रवीण था। इतना ही नहीं, वह नृत्य और संगीत की कला भी जानता था। वह काम-कला में प्रवीण न होता तो उसके परिवार का निर्माण कैसे होता? वह अस्त्र शस्त्र के निर्माण की कला भी जानता था। उसने प्रस्तर-युग के हिंस्र वन्य पशुओं और प्रकृति से रक्षा करने तथा खाद्य संग्रह करने के लिए पत्थर के विभिन्न औजारों का निर्माण किया। प्रागैतिहासिक युग के बहुसंख्यक शैल-चित्रों पर आखेठक के रूप में मनुष्य का चित्रण हुआ है जो इस बात का सूचक है कि उस युग का मानव शस्त्रास्त्रों के निर्माण तथा संचालन एवं संधान की कला में भी निपुण था। भीम बैठका तथा बेलन घाटी में 2000 से अधिक शस्त्रास्त्र मिले हैं जो अपनी अस्त्रशस्त्रीय उपयोगिता के साथ-साथ उस युग के मानव की कलाप्रियता के भी द्योतक है।[1] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रागैतिहासिक संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसे हम परवर्ती विकसित संस्कृति का आधार मान सकते हैं।

---

1. प्राचीन भारत के शस्त्रास्त्र : शिव कुमार, आज सायं समाचार, 24-10-74, पृ० 15

सातवाँ अध्याय

प्रागैतिहासिक कालीन संस्कृति : काल-निर्धारण

कैमूरघाटी विन्ध्य क्षेत्र का वह भू-भाग है जहाँ मूलभूत संस्कृति का अनेकानेक शाखा-प्रशाखाओं के रूप में विभिन्न संस्कृतियों का प्रसार हुआ है। गंगा और सोन के बीच में अवस्थित, सुदूर, तक फैला यह भू-भाग मानव विकास की अद्भुत कहानी कहता है। यहाँ की गुफाओं, खोह-कन्दराओं तथा नदियों की घाटियों में प्रागैतिहासिक काल का इतिहास छिपा पड़ा है। इनमें गेरू और घाऊ के बने हजारों चित्र तत्कालीन संस्कृति के प्रतीक हैं। ऐसे चित्र मध्य प्रदेश, बिहार के बुंदेलखंड, होशंगाबाद, सिंघनपुर आदि स्थानों में भी पाये जाते हैं। बुंदेलखंड में इन्हें रकत की पुतलियाँ कहा जाता है। विन्ध्याचल के विभिन्न भागों में पाये गये इन चित्रों के बारे में राधाकुमुद मुकर्जी का विचार है कि ये चित्र प्रागैतिहासिक काल के हैं।

भू-गर्भ शास्त्री पृथ्वी की आयु के चार प्रधान युग मानते हैं।

(1) अजन्तुक—जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन नहीं था (अस्सी करोड़वर्षपूर्व)

(2) पुराजन्तुक—(26करोड़वर्षपूर्व)-जब मेरु-दंड-हीन प्राणियों के रूप में जीवन के चिह्न पहले पहल दिखायी पड़े। आरंभ में सामुद्रिक घास, शैवाल, स्पंज, लिबलिब मछली, बाद में मत्स्य, सरीसृप, पक्षी, एवं बड़े-बड़े पेड़ और जंगल-जिनसे कोयले और अंगारों की संधियाँ बन गयीं।

(3) मध्यजन्तुक—(14करोड़पर्षपूर्व)

(4) नवीनजन्तुक— (4करोड़वर्षपूर्व)हाल में उत्पन्न जीवन, जिस युग में विविध प्रकार के स्तनपायी जन्तु विकसित हुए, जिन मनुष्य भी सम्बन्धित हुआ।[1] मनुष्य के अस्तित्व में आने में पहाड़ों का सर्वाधिक योगदान रहा है। वैरल ने सबसे पहले यह सुझाव दिया था कि मध्य उषा कालीन युग के लगभग अन्त में, 10 लाख वर्ष पहले मानव और हिमालय एक साथ ही अस्तित्व में आये। सर आर्थर स्मिथ वुलवर्ड

1. हिन्दू सभ्यता, राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० 8

के मतानुसार जब पृथ्वी ऊपर उठी, तापमान घट गया और कुछ बानर जातीय जन्तु, जो पहले गर्म जंगलों में बसते थे, उठी हुई धरती के ऊपर की ओर आ गये तथा जब जंगल हटे और उसकी जगह खुले मैदानों ने ली; मनुष्य के पूर्वजों को भूमि पर रहने के लिए बाधित होना पड़ा। यदि वे पेड़ों पर ही रहते, या बानरों की तरह भूमि और वृक्षों दोनों स्थानों पर रहते तो कभी मनुष्य का विकास न होता।[1] मनुष्य के विकास के साथ ही इतिहास का सृजन आरंभ हुआ। इस आरंभिक इतिहास को हम प्रागैतिहासिक संस्कृति के नाम से जानते हैं। उसे पाषाण-युग भी कहते हैं क्योंकि अपनी आरंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य ने जिन उपकरणों का प्रयोग किया था, वे प्रायः पत्थर के थे। प्रागैतिहासिक काल की गुफाओं के उत्खनन में औजार, हथियार, बर्तन-भाँड़े और तत्कालीन मानव के अस्थि-अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। शुरू-शुरू में पत्थर के औजार बनाये गये जो बड़े खंड में से टाँचे हुए और शक्ल में अनगढ़ होते थे। इस प्रकार के औजारों को पाषाण या पूर्व-प्रस्तर-युग का कहा जाता है। उसके बाद नया पाषाण या नव-प्रस्तर-युग आया जिसमें पत्थर के औजारों को तराश कर, घिस कर और चिकना करके अपेक्षया सुधरे रूप में बनाया जाता था। इनके साथ प्रायः उन पशुओं के ढाँचे मिले हैं जो अभी तक लुप्त नहीं हुए। इस युग में मिट्टी के बर्तन भी पहले हाथ से और पीछे चाक पर बनाये जाने लगे थे। साथ ही, भारी शिला-खंड को आरा-खड़ा रख कर बनायी हुई समाधि में शवों को भू-निखार करने की प्रथा के द्वारा मृतात्माओं का सम्मान करने का भाव भी इस युग में उत्पन्न हुआ।

पूर्व-प्रस्तर-युग के अवशेष भारत में यत्र-तत्र मिल जाते हैं किन्तु मध्य या नव-प्रस्तर-युग के अवशेष बहुलता से मिलते हैं। वे मुख्यतः दक्षिण पूर्वी पठार और द्रविड़ देशों में ही पाये जाते हैं। मध्य या नव्य-पाषाण-काल के अवशेष विन्ध्य की गुफाओं में बहुत हैं।

1—चकमक की कतरनें—आधा इंच से लेकर डेढ़ इंच तक लम्बे चकमक पत्थर मिटटी और औजार मिले हैं जो आकार-प्रकार में बाण की नोक के समान नुकीले या गठीले हैं। उनका उपयोग उस समय का मानव औजारों में दस्ते के रूप में या अपने हाथों में लगा कर करता था। ये प्रायः विन्ध्याचल के रेतीले या छिछले नदी किनारों में, बघेलखंड, रीवाँ, मिरजापुर में दरियों या गुफाओं में चूल्हे की राख और कोयलों के साथ मिले हैं।

2—राख के दूहे—(सिंडर माउन्ट्स) जो दक्षिण भारत के बेलारी जिले में मिले हैं। ये पशुओं की बलि के कारण बन गये थे। इस तरह के दूहे मिरजापुर में भी

1. टामसन गैडीज, आउटलाइन्स ऑव जनरल बायोलाजी, भाग 2, पृ०-1164

उपलब्ध हुए हैं क्योंकि यहाँ भी बलि चढ़ाई जाती थी, जैसा कि चित्रों से स्पष्ट है।

3—प्यालेनुमा घट्टे—ऐसे निशान कई स्थानों पर पत्थर या चट्टानों पर बने मिले हैं, इन्हें नव-प्रस्तर-युग के मानव की कृति कहा जाता है। मिरजापुर में ऐसे जो निशान मिले हैं, उन्हें किसी दंतकथा से जोड़ कर किसी महापुरुष के चरण-चिह्न का प्रतीक कहा जाता है।[1]

4—गेरू या घाऊ के रेखाचित्र—इस पुस्तक में इनका विस्तार से उल्लेख किया गया है। ये नव-प्रस्तर युगीन औजारों के साथ मिले हैं। उस युग के औजारों के चित्र भी इन गुफाओं में अंकित हैं। मिरजापुर में इन चित्रों की अधिकता है।

5—समाधियाँ—पूर्व-प्रस्तर युगीन मानव शवों को जंगलों में यों ही डाल देते थे, पर नव-प्रस्तर युगीन मानव ने अपने शव के संस्कार में कुछ सुधार किये और वे उन्हें गाड़ने लगे। ऐसे श्मशान भारत में कम ही मिले हैं किन्तु मिरजापुर में एक कब्र में मिट्टी के रोगनदार बर्तन और काँच के टुकड़ों के साथ एक युवा पुरुष का कंकाल मिला था।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिरजापुर जनपद में प्रागैतिहासिक काल की आदिम संस्कृति के प्रायः सभी प्रमाण मिले हैं। अतः यहाँ की प्रागैतिहासिक संस्कृति का समय अत्यंत प्राचीन हो सकता है। यद्यपि यह मानना होगा कि मानव आज से 6-7लाख वर्ष तक प्रायः असभ्य ही था।[3] वह जानवरों का-सा जीवन व्यतीत करता और उन्हीं के साथ घुल-मिल गया था। यही कारण है कि उसने अपनी सभ्यता के जो अवशेष छोड़े उसमें पशु तथा अन्यान्य जीवधारियों के चित्र भी अंकित हैं। पुरातत्व-वेत्ताओं ने लिखा है कि "–यह समस्त क्षेत्र जहाँ पर आदिमानव के असंख्य उपकरण प्राप्त हो सकते थे, रिहन्द नदी के बाँध में डूब गये, जो क्षेत्र बचा, उसकी खुदाई करायी गयी और जो सामग्री निकली उससे भी इन्हीं तथ्यों की पुष्टि होती है।[4]

---

1. दे० लोरिकायन लोरिक संबन्धी प्रवाद और किंवदंतियाँ, अर्जुनदास केसरी पृ०21

2. हिन्दू सभ्यता, राधाकुमुद मुरजी पृ० 13

3. एंश्येन्ट हिस्ट्री, एफ० पी० कोरोवकिन, पृ० 8

4. प्रागैतिहासिक काल में उत्तर प्रदेश डॉ० सांकलिया, धर्मयुग, 16 अप्रैल, 19.2, पृ० 25

अब विचार करना है कि कृषि-कार्य की कानकारी 25 सौ वर्ष ई० पू० में लोगों को किस प्रकार मिली। उधर मृद्भांडों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह संस्कृति 17 सौ वर्ष ई० पू० की रही होगी। इस तरह बात स्पष्ट हो जाती है कि 25 सौ वर्ष ई० पू० से 17 सौ ई० पू० तक यहाँ का मानव कुछ सभ्य होने लगा था किन्तु इसके सभ्य होने के पूर्व भी यहाँ उसकी उपस्थिति विद्यमान थी। विद्वानों के अनुसार इस अश्मयुगीन जीवन का वेदों में कुछ उल्लेख नहीं है, किन्तु पुराणों और कल्पसूत्रों में इनके जीवन का सजीव वर्णन पाया जाता है। भागवत पुराण में बताया गया है कि राजा पृथु ने इस भूतल को सपाट अथवा समतल बनाया और तभी से इसका नाम पृथ्वी पड़ा। इससे पहले पृथ्वी में बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वत, पहाड़ियाँ तथा घाटियाँ थीं जो कृषि के लिए उपयोगी नहीं थीं। सर्व प्रथम पृथु ने कुम्हार की कला और कृषि का कार्य प्रारम्भ किया। इस प्रकार पृथु द्वारा सँवारे जाने के अनंतर इस भूभाग का नाम 'पृथ्वी' पड़ा। जन्म लेने के साथ ही मानव ने पृथु की तरह कला सीखी और अपने आस-पास के वातावरण को चित्रित किया।

जहाँ तक गुहाचित्रों का सम्बन्ध है, इन्हें किसी एक काल की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। इसीलिए एच० बुई० का कहना है कि गुहाचित्रों के काल-निर्णय का आग्रह करना ठीक ही नहीं है। आग्रह करने वाले व्यक्तियों को इस विषय की कठिनाइयों से अपरिचित और अनभ्यस्त समझना चाहिए।[1] काक्वर्न महोदय का विचार है कि कैमूर के निवासी कुछ ही समय पूर्व पाषाण युग के बाहर हैं और यह समय 10 वीं शती ई० है।[2] डी० एल० ड्रेक ब्राकमैन का कहना है कि उस क्षेत्र से युक्त गुफाएँ सर्वप्राचीन मानव-निवास-स्थल हैं और भर जाति चेरो, शेवरी, खरवार आदि की तुलना में सबसे प्राचीन जाति है।[3] कार्लाइल महोदय इसका समय 3 हजार वर्ष से भी अधिक मानते हैं।[4] काक्वर्न के काल-निर्णय का आधार खदाई में प्राप्त कुछ अस्थियाँ तथा उपकरण हैं। कार्लाइल महोदय ने रंग की स्थिरता के आधार पर अपना मत प्रकट किया है। ब्राडिल महोदय इससे भिन्न अपना मत प्रकट करते हैं और कहते हैं कि सिंधनपुर, आजमगढ़ और मिरजापुर के चित्र उल्लेखनीय हैं। उनकी योरोपीय देशों के चित्रों से तुलना नहीं की जानी चाहिए और न उन्हें किसी

---

1. फो० ह० से० के० आ० (फोर हंड्रेड सेनचुरी ऑव केव आर्ट) पृष्ठ 32
2. जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल, खंड 3, 2, पृ० 57-58
3. मिरजापुर गेजेटियर, 1911 वा० 26, पृ० 198
4. इट इज पासिबुल दैट सम ऑव द रॉक ड्राइंग्स ऑव्द कैमूर्स आर 3000 ईयर्स ओल्ड आर इवेन मोर, बट सम, ऐज हैज बीन सीन नोटेड आर मोर रीसेन्ट वही, पृ० 200

काल-सीमा में बाँधना ही ठीक है। गार्डंग महोदय ने पंचमुखी और मिरजापुर के कोहबर के चित्रों में साम्य दिखाते हुए उन चित्रों का ई० सन् के पूर्व या बाद की शताब्दी के लगभग अंकित होना संभव माना, किन्तु अपने मत का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया। इसी प्रकार डॉ० एस० ए० साली ने कार्बन डेटिंग के आधार पर गुहाचित्रों का समय आज से 25 हजार वर्ष से 40 हजार वर्ष के बीच निश्चित किया है। कुछ अन्य विद्वान उन चित्रों को प्रागैतिहासिक काल में प्राचीन और नवीन पाषाण काल के पास का सिद्ध करते हुये कहते हैं कि वहाँ पाषाणास्त्रों और शव-समाधियों की अनेक शृंखलाएँ प्रकाश में आती हैं। डॉ० राधाकान्त वर्मा भी इसी मत का समर्थन करते हैं और कहते हैं कि हाथ के निशान जहाँ भी हैं, वे अत्यन्त प्राचीनता के प्रतीक हैं। भारतीय विद्वानों ने भी गुहचित्रों के समय पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। यह बात सच है कि पाश्चात्य विद्वानों ने ही सर्वप्रथम इस ओर ध्यान आकृष्ट कराया, तब भी भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने गुहाचित्रों को अपने अध्ययन का विषय बना लिया और अपने मत भी सप्रमाण सिद्ध किये।

मनोरंजन घोष के विचार से मिरजापुर के क्षेत्र चौथी से दसवीं शती के बीच के हैं। उनके काल-निर्णय का आधार अहरौरा और विजयगढ़ के शिलाचित्र हैं।[1]

डॉ भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार "स्पेन की आल्टामाइरा दक्षिणी फ्रांस और मिरजापुर की गुफाओं की चित्रित दीवारें आज से प्राय: 25 हजार वर्ष पहले की हैं। उनका समय ई० पू० 10 हजार से 30 हजार वर्षों के बीच कहीं भी रखा जा सकता है।"[2]

डॉ० वी० वी० लाल का कथन है कि मिरजापुर-क्षेत्र में गैंड़े के आखेट-दृश्य में अंकित अस्त्रों का रूपसाम्य ताँबे के बने काँटेदार भालों या हारपूनों से मिलता-जुलता है। अतः ये चित्र भी उसी काल के, अर्थात् आर्यों के आगमन से पूर्व के सिद्ध होते हैं, क्योंकि ताम्रास्त्रों के निर्माता एक ऐसी जाति के लोग थे जो आर्यों के आगमन से पूर्व ही गंगा घाटी में रहते थे।

प्रो० ए० के० नारायण को मिरजापुर क्षेत्र के चित्र नव पाषाण काल से अधिक प्राचीन नहीं लगे। डॉ० राधाकान्त वर्मा भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाते-"नो ऐबसोल्यूट डेटिंग ऑव पेंटिंग इन दिस रीजन कैन बी अटेंपटेड ऐट प्रेजेन्ट,ड्यू टु पॉसिटी आव् द डेटेबुल मेटीरियल"[3]

---

1. मेमयर्स ऑव द आर्केयोलाजिकल सर्वे ऑव इंडिया, 24 पृ०-20
2. सम्मेलन पत्रिका, कलांक, 'विश्वकला की मंजिलें' नामक लेख, पृ० 33
3. स्टोन एण्ड कल्चर्स ऑव मिरजापुर, अध्याय9, पृ० 325

वाकणकर का विचार है कि कैमूर घाटी के हाथियों के चित्र सबसे प्राचीन हैं, उसके बाद आखेट-दृश्य तथा मानवाकृतियाँ तो तीसरे स्थान पर हैं, दूसरे स्थान पर महिष का चित्र है। गैंडा के चित्र को भी वे पुराना ही मानते हैं। उनके अनुसार इन चित्रों को 200 से 15 सौ ई० पू० के बीच का मानना चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि आदिमानव हुआ कब ? उसके अन्दर चित्रकला के प्रति रुचि का संस्कार कब पैदा हुआ ? कुछ लोग योरोप से मानव का विकास मानते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि योरोप में भी आदिमानव अफ्रीका और पश्चिमी एशिया से गये तथा यह घटना सहस्राब्दियों पूर्व घटित हुई। कुछ अन्य विद्वान वंशवृक्ष से मानव का विकास मानते हैं और उसे दो शाखाओं में विभक्त करते हैं - (1) होमोएरेक्टस, (2) होमोसैपियन्स। दूसरी शाखा का मानव मेधावी था, वह चित्रकार भी था। इसी को एक लंबी परंपरा आज तक चलती आ रही है।

जहाँ तक भारत में मानव के प्रथम आगमन का सम्बन्ध है, डॉ० साँकलिया मानते हैं कि उसका मूल स्थान अफ्रीका था। वहीं से अन्य देशों में वह गया। भारत में वह मानव सर्वप्रथम गुजरात में साबरमती और महानदी के कगारों में आकर बसा। यहाँ उसके हथियार भी प्राप्त हुए हैं जिनके परीक्षण से निष्कर्ष निकलता है कि वह समय द्वितीय अनंतर हिमयुग था। इस तरह वे भारत में मानव का अस्तित्व लाखों वर्ष पूर्व मानते हैं। विन्ध्य-क्षेत्र में भी मानव का आगमन लाखों वर्ष पूर्व हो चुका था। डॉ० साँकलिया ने अफ्रीका के पाषाणास्त्रों को 17 लाख वर्ष पुराना माना है और उसके ही आधार पर भारत के पाषाणास्त्रों को भी 8 लाख वर्ष पुराना होने का अनुमान किया है।[1]

जो भी हो, मेरा अपना विचार है कि यहाँ के ये चित्र किसी एक समय के नहीं हैं। कई ऐसी गुफाएं मिली हैं जिनकी शिलाओं पर कई कई बार चित्र बनाये गये हैं। वनस्पतियों और जीवाकृतियों को आरंभिक युग का मान लिया जाय तो निःसंदेह सूर्य, हाथी, गैंडा, बन्दर, भालू, आदि जानवरों के चित्र, मानवाकृतियाँ और आखेट-दृश्य उसी काल के हैं, जब मनुष्य का जन्म हुआ। यह कहना कि इतने पुराने जमाने से ये चित्र सुरक्षित नहीं रह सकते, बेतुकी बात है। अधिकतर शैलाश्रय ऐसे स्थानों पर बने हैं, जहाँ सूर्य की किरणें भी प्रायः नहीं पहूँच पातीं। फिर हवा-पानी का प्रभाव भी उन पर कैसे पड़ सकता हैं ? अतः उनके नष्ट होने का सवाल तब तक नहीं उठता जब तक चित्रों का रंग फीका न हो जाय। अनुमान है कि ये रंग भी ऐसे रस-रसायनों से बने हैं जो अमिट हैं। बाद में भी इन चित्रों पर रंग चढ़ाये गये होंगे। ●

---

1. प्रीहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटो हिस्ट्री इन इंडिया ऐण्ड पाकिस्तान, पृ० 278

आठवाँ अध्याय

उपसंहार

सृष्टि के प्रति जिज्ञासा मानव की सहज, स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हम अपने आस-पास जो भी देखते हैं, अनुभव करते हैं, उसके बारे में अन्य तमाम बातें जानना चाहते हैं। आदिमानव में भी अपने आस-पास की जिन्दगी के बारे में जानने की जिज्ञासा रही होगी। जिन्दगी को मौत के पंजों से बचाने के लिए ही उस युग के मानव ने पहाड़ जिये थे। अपने जीवन को जीने के लिए और जीवन-संघर्ष की उस कहानी को अमिट बनाने के लिए उसने कई उपाय सोचे और किये थे। उसने कहीं चट्टानों पर अपने जीवन संगीत टाँके तो कहीं लोहे, ताँबे और काँसे या पत्थरों पर अक्षरों के मोती पिरोये। कहीं उसने पहाड़ों को खोदकर मंदिर बनाये तो कहीं दीवारों पर एक से एक अभिराम चित्र भी वे बनाते गये। प्रागैतिहासिक काल के अतिरिक्त अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ भी इसका प्रमाण हैं।

प्रागैतिहासिक कालीन मानव ने भी जंगलों, पहाड़ों, खोह-कन्दराओं और नदियों की तलहटियों पहाड़ की गुफाओं में अपना बसेरा बनाया। वहाँ उसने अपने जीवन के अनेक चित्र तथा पद-चिह्न भी अंकित किये जिनको देखने से प्रेम, दया, करुणा, घृणा और क्रूरता आदि मनोविकारों के बीज भी अंकुरित मिलते हैं। इन चित्रों को देखने से ऐसा लगता है कि उस समय का मानव आज के समतावादी सिद्धान्तों का भी पोषक था। राजा-रंक, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, जाति-पाँति का भेद-भाव तब नहीं के बराबर था। उस समय तो बस दो ही जातियाँ थीं। एक मानव की, दूसरी पशु-पक्षियों अथवा कीड़े मकोड़ों की। इनमें भी कहीं असामंजस्य नहीं था, असहयोग नहीं था। पशुओं से घृणा थी तो उनकी पशुता से, वर्ना वे उसके मित्र भी थे। इस तरह हम देखते हैं कि प्रागैतिहासिक काल के मानव की कला के प्रति विशेष रुझान थी। कला ही उसकी भाषा और वाणी थी जिसके माध्यम से वह अपने भावों-विचारों को व्यक्त करता था।

सम्पूर्ण भारत वर्ष में ऐसे चित्र बाइस प्रभागों के पनचानवे स्थानों में पाये गये हैं और इनकी संख्या 1001 मानी गयी है। किन्तु यह आँकड़ा वाकणकर महोदय द्वारा

प्रस्तुत किया गया बहुत पुराना आँकड़ा है। नयी खोजों के आधार पर चित्रित शैलाश्रयों की संख्या लगभग दो हजार से अधिक है। वाकणकर महोदय ने मिरजापुर के चित्रों को तीन प्रभागों में विभक्त कर के अहरौरा संभाग के लिखनियाँ में 3, भल्दरिया में 1, लोहरी में 1, कोहबर में 1, मुगदरिया में 2, अन्दर मुखदर में 1, थरपात्र में 1, विजयगढ़ में 2, इस प्रकार कुल 12 शैलाश्रयों का उल्लेख किया है। उन्होंने राबर्ट्सगंज के पास वाले प्रभाग के मुरहना पहाड़ में 7. बेदिया में 2. लाड बेदिया में 2, बागा में 3, बगई कोट में 2, मरचहवा में 1, खारीपटेरो में 2, मूड़ी बावा में 1, और लेखलियाँ में 5 शैलाश्रयों का उल्लेख किया है। उन्होंने राजपुर प्रभाग के अन्तर्गत पंचमुखी में 6, कंडाकोट में 2, चिनानिवा में 1 और लेखनियाँ में 5, कुल 14 शैलाश्रयों का नामोल्लेख किया है किन्तु अब राजपुर से लगभग 10 कि० मी० दक्षिण पूरब के कोण पर लेखनियाँ में शैलाश्रय मिले हैं। उसके अतिरिक्त कंडाकोट, सोरहो घाट में भी कुछ शैलाश्रय मिले हैं। चिनानिवा के शैलाश्रयों का कहीं पता नहीं है। वाकणकर साहब से अधिक चित्र डाँ० जगदीश गुप्त को मिले थे। उन्होंने मिरजापुर के अधिकांश शैलाश्रयों का नामोल्लेख तो ठीक किया है, किन्तु उनके बारे में जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह भ्रमात्मक है। श्री राकेश तिवारी ने भी कुछ नये शैलाश्रय खोज निकाले हैं। कुछ अन्य विद्वान भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। मिरजापुर में इन पंक्तियों के लेखक को सार्वाधिक चित्र मिले हैं जिनको विभिन्न संभागों में विभक्त करके शैलाश्रयों का अलग-अलग अध्ययन एवं चित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

ये विवरण ही पर्याप्त नहीं हैं। इनके अतिरक्त भी ऐसे शैलाश्रय हैं, जिसके चित्रों की खोज अभी भविष्य के गर्भ में है। समय-समय पर इन चित्रों ने विद्वानों को अपनी ओर अध्ययन के लिए आकृष्ट किया है। साधनों और सीमाओं को देखतेहुए यह जानकर कि मिरजापुर के चित्रों का अध्ययन सही रूप में नहीं किया गया है, मैंने प्राप्त शैलाश्रयों के आधार पर यह अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार कर लेने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि अभी भी अनेक पहाड़ियों में छिपी गुफाओं के अध्ययन और खुदाई की आवश्यकता है और यह संभव है कि कुछ और भी महत्वपूर्ण चित्र मिलें, जिनके आधार पर तत्कालीन संस्कृति एवं कला का और विशाद रूप में मूल्यांकन हो सकेगा।

परिशिष्ट—1

सन्दर्भ-साहित्य

(हिन्दी)

अन्धकार युगीन भारत का इतिहास : जायसवाल, काशीप्रसाद
आदिकालीन हिन्दी साहित्य कोश—हरीश (डॉक्टर)
आदिवासी जीवन—केसरी, अर्जुनदास (डॉक्टर)
कला और संस्कृति की भूमिका—अग्रवाल, वासुदेव शरण
काशी का इतिहास—मोतीचन्द (डॉक्टर)
थिरकते शैल चित्र—तिवारी, राकेश
पुरातत्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन
भारतीय संस्कृति—देवराज (डॉक्टर)
भारतीय इतिहास की रूपरेखा—विद्यालंकार, जयचन्द
भारतीय आदिवासी—विद्यार्थी, ललित प्रसाद
भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि-गार्डन, एच०
भारत की संस्कृति का इतिहास—राव, राजेन्द्र
भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास—विद्यालंकार, हरिदत्त
मध्य प्रदेश का इतिहास—हीरालाल
लोरिकायन—केसरी, अर्जुनदास (डॉक्टर)
लोरिकायन : एक अध्ययन—केसरी, अर्जुनदास (डॉक्टर)
सान के पानी का रंग—मिश्र, देवकुमार
हिन्दू सभ्यता—मुकर्जी, राधाकुमुद

पत्र-पत्रिकाएँ

आज—वाराणसी
कला त्रैमासिक—ललित कला अकादमी, लखनऊ
दिनमान—टाइम्स ऑव इण्डिया, नई दिल्ली
नागरी प्रचारिणी पत्रिका—काशी नागरी प्रचारिणी सभा
धर्मयुग—टाइम्स ऑव इन्डिया प्रकाशन, बम्बई
सम्मेलन पत्रिका—कला-संस्कृति विशेशांक, हि० सा० स० प्रयाग
सर्वे—संग्रहाल पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ

(अंग्रेजी)

एँश्येन्ट इण्डिया एज—मेगस्थनीज
एँश्येन्ट इण्डियन हिस्ट्री—मजुमदार
एँश्येन्ट ज्याग्राफी ऑव् इण्डिया—कनिंघम
आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
गाइड टु द एन्टीक्वीटीज ऑव् स्टोन एज : ब्रिटिश म्युजियम
इण्डियन एन्टीक्वेरी भाग–16
इण्डियन रॉक शेल्टर पेंटिंग्स : बक्स एण्ड राबर्ट, आर० आर०
इम्पीरियल गजेटियर, इलाहाबाद
इम्पीरियल गजेटियर ऑव् इण्डिया वा० 3, कलकत्ता
जर्नल ऑव् द एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बेंगाल
जर्नल ऑव् द बिहार एण्ड उड़ीसा रीजन सोसायटी
ज़र्नल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसायटी : काकवर्न. जे०
मिरजापुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर 1911
मैन पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट : कैम्ब्रीज
ओल्ड चिप्ड स्टोन्स ऑव् इण्डिया—लीगन, ए० सी०
प्री हिस्ट्रोरिक मैन एण्ड हिज आर्ट इन सेन्ट्रल इण्डिया : मठपाल, वाई०
प्री हिस्टोरिक आर्ट ऑव इण्डिया वा० 34
प्री हिस्टोरिक पेंटिंग्स ऑव् सिंघनपुर, ब्राउन पर्सी
प्री हिस्टोरिक एण्ड प्रिमिटिव मैन—लोम्मेल, आन्द्रेश
प्री हिस्टोरिक एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑव् इण्डिया एण्ड पाकिस्तान : सांकलिया, एस० डी०
प्रीमिटिव कल्चर : क्रुक, डब्ल्यू०
पैलियोथिक इण्डस्ट्रीज ऑव साउदर्न यू० पी०—पंत, पी० सी०
रॉक पेंटिंग्स एण्ड अदर एन्टीक्वीटीज ऑव् प्री हिस्टारिक एण्ड लैटर टाइम्स—घोष, मनोरंजन
रॉक आर्ट ऑव् भीम बैठका रीजन—मिश्र, बी० एन० एण्ड मठपाल, वाई०
रॉक पेंटिंग्स ऑव् होसंगाबाद—बुलेटिन ऑव् द नागपुर म्यु० 9125
रिकन्स्ट्रक्टिंग स्टोन एज पेंटिंग्स—बुक्स, राबर्ट, आर० आर०
स्टोन एज पेंटिंग्स इन इण्डिया, 1965 बुक्स राबर्ट एण्ड वाकणकर
द कापर ब्रांच एज इन इण्डिया—अग्रवाल, डी० पी०
द प्रीहिस्ट्री ऑव् अफ्रीका—एलिमेन, एस०
द प्रीहिस्टोरिक बैकग्राउण्ड ऑव् इण्डियन कल्चर—गार्डन, जी० एच०
ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज : क्रुक, डब्ल्यू
द बर्थ ऑव इण्डियन सिविलाइजेशन—ब्रिजेट एण्ड रायमंड

परिशिष्ट—2

पारिभाषिक शब्दावली

अंधकार युग–Alphabet length
अध्ययन–Studies
अधिकृत–Authorised
अन्तर्राष्ट्रीय–International
अन्योन्याश्रय–Interdependence
अनुक्रम–List of contents
अप्रकाशित–Unpublished
अभियान–Drive
अलिखित–Unwritten
अवशेष–Remains
अश्वारोही–Equestrienne
अस्तित्व–Existence
अक्षर चिह्न–Syllable
अक्षर लम्बाई–Alphabet length
आकार–Siege
आखेट प्रणाली–Hunting method
आदिम–Primitive
आदिम कला–Primitive art
आदि प्राणी–Primal being
आदिम जीवाश्म-Primitive fassil
आदिम मानव–Primitive man
आदिम जन–Rude people
आदि मानव–Dawn man
आद्य संस्कृति–Protoculture
आदिवासी–Aboriginal
आदिवासी संस्कृति–Tribal culture
आदि युग–Primal times
आमूल परिवर्तन–Radical change
आमोद प्रमोद–Amusement
आवास गृह–Halutade
आश्रय-Shelter
इतिवृत्त–Chronicle
इतिहासज्ञ–Historian

ईमानदार–Honest
उच्चवर्ग Uper class
उत्कीर्णन–Engraving
उत्खनन क्षेत्र–Excavation area
उत्सव, पर्व–Festival
उन्मुक्त–Imusunne
उपकरण–Implement
उपसंहार–Conclusion
उपेक्षा–Neglect
औद्योगिक संस्कृति–Technological culture
कृति–Work
कृषि कला–Agricultural art
कल्पना–Imagination
कलाकृति–Work of art
कलाकार–Artist
काम भावना–Emaristic sentiment
कार्बन तिथि निर्धारण–Carbon dating
काल निर्धारण–Dated document
कुठार–Axe
कोर–Flange
खानाबदोश–Nomad
खोज–Exploration
गृहकला–Home art
गदा-Moce
गरुड़–Eagle
गुहा, गुफा–Cave
गुहाचित्र-Cave art
गुहामानव–Cave man
गेरु–Red ochre
गौरव–Diginity
घरेलू–Domestic

चाकू फलक–Knife blade
चित्र फलक–Illustration board
छत्र–Terrace
जटाजूट–Matted hair
जनसमूह–Mass
जन साधारण–Daity
जनश्रुति–Heardsay
जाति–Caste
जीर्णशीर्ण–Delapidated
जीर्णोद्धार–Repair
जीवन पद्धति–Way of life
जीवाश्म विज्ञान–Palaeontology
जीविका–Subsistence
जोखिम–Risk
टीला–Terp
ढाल–Shield
ताम्रयुग–Copper age
तालपत्र–Palm leaf
तुरही–Tur
तुलनात्मक–Comparative
तूलिका–Brushpen
दन्त कथा–Anecdote
दया–Mercy
दाम्पत्य–Marital
दायें रुख–Rightmotion
दुर्ग–Fort
दूरी–Distance
देवपूजा–Theolatry
दैत्य, देवता–Daimon
नृत्यकला–Orchesis
नृत्यमंच–Komistra
न्यायकरण–Administration
न्यायालय–Law court
नौका–Sailing craft
नौका बिहार–Boat play
पद्धति–System
परंपरा–Tradition

परिवार संगठन–Family organization
परिवेश–Suroundings
परिष्कृत–Refined
परीकथा–Marchen
पशुपालनHerding
पांडुलिपि–Manuscript
पाषाण संस्कृति–Lithic culture
पुनरावृत्ति–Replecation
पुरा पाषाण काल–Palaeolithic period
पुरा मानव–Palaeoanthropic man
पुरावशेष मंजूषा–Reliquary
पुरोहित–Officiant
पौराणिक–Mythical
प्रकृति–Nature
प्रतीक–Emblem
प्रथम संस्करण–Original edition
प्रदेश, क्षेत्र–Tract
प्रयोगशाला–Laboratory
प्रवास–Migration
प्रागैतिहासिक काल–Prehistoric age
प्रागैतिहासिक–Prehistoric.
प्रागैतिहासिक चित्रण–Prehistoric painting
प्राथमिक आवश्यकता–Primary need
प्रेत पूजा–Necrolatry
फलक–Blade
बाधा–Obstruction
बिगाड़ना–Tampering
भरण पोषण–Maintenance
भरमार–Glut
भावचित्र–Action painting
भावुकतापूर्ण–Sentimental
भेंट, बलि–Offering
भेदभाव–Discrimination
भित्तिचित्र कला–Parietal art
भौगोलिक स्थिति–Geographical location

मंजूषा–Casket
मदोन्मत्त–Drunken
मनोविनोद–Recreation
मनोवैज्ञानिक–Psychological
मल्ल युद्ध–Pancratium
मृत संस्कृति–Dead culture
मानवता–Humanity
मानव समाज–Human society
मांसाहारी–Carnivorous
मानवाकृति–Anthropomorphological
यातायात–Traffic
यायावर–Nomad
यात्रा–Travel
युद्ध–War
युद्ध क्षेत्र–Warzone
युद्ध प्रियता–Jingoism
युद्धरत–Warring
रंग–Colour
रंगमेल–Colour matching
रण व्यूह–Battle array
रेखाचित्र–Abbozzo
लोककला–Folk art
लोकसाहित्य–Folk literature
लोकवार्ता–Folklore
लोग–People
वन्य-संस्कृति–Forest culture
व्यक्तिपूजा–Personality cult
वर्गीकरण–Classification
वास–Occummodation
विचारविमर्श–Discussion
विभागाध्यक्ष–Departmental head
विश्व–World
विश्लेषणात्मक–Analytical
विशिष्ट, विशेष–Distunctive
वीणा–Lyra
वीरपूजा–Hero worship
वेणी–Pleat
शिल्पी–Artificer
शिलाकृत–Rock cut
शुष्क वर्ण–Dry colour
शूली चढ़ाना–Impaling
शोध निबंध–Academic dissrtation
शोषक–Drift
शैलचित्र–Petrography
शैली–Style
शौर्य–Chivalry
संकलन–Compitation collection
संकलनकर्ता–Organizer
संकेत–Sign, notation
संगति–Accompaniment
संयुक्त–Joint
संस्था–Institution
संहिता–Juncture
सज्जा–Makeup
सजावट का काम–Applique work
सजीव–Animate
स्वस्तिक–Fylfot
स्वीकार्य–Acceptable
सर्वहारा–Proletarian
सहज प्रवृत्ति–Imborn tendency
सदय कलाकार–Sympathetic artist
सांस्कृतिक–Gultural
सामन्त–Baron
सामाजिक रचना–Social structure
सामूहिक शिकार–Collective hunts
सार्वभौम–Global
सिक्का–Coin
हथकुठार–Hand axe
हनुमान–Monkey god
हांका–Battne
क्षेत्र–Region
ज्ञान–Knowledge

लेखक की अन्य कृतियाँ

1—लोरिकाय (भोजपुरी लोकमहाकाव्यः पुरस्कृत)	75.00
2—लोरिकायन: एक अध्ययन (शोध प्रबन्ध)	50.00
3—आदिवासी जीवन	35.00
4—करमा (आदिवासी गीतों का संग्रह)	25.00
5—एगो रहन ऽराजा (आदिवासी-कथा-संग्रह)	3.00
6—हिन्दी साहित्य के उत्थान में मिर्जापुर का योगदान (प्रेस में)	

प्राप्ति स्थान

लोकरुचि प्रकाशन, राबर्ट्सगंज, मिरजापुर (उ० प्र०)